आगम-निबंधमाला । ग्रंथ १९

अपने अंदर

इन्द्रशक्तिका विकास।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि.सातारा)

तृतीय वार

संवत् १९९१, शक १८५६, सन १९३४

ओं

इन्द्रशक्तिका विकास।

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि० सातारा.)

मूल्य ॥)

विषयसूची।

इंद्र-शक्ति !

मनुष्यके अंदर तथा अन्य प्राणियोंके अन्दर इतनाही नहीं परंतु संसारके संपूर्ण पदार्थोंके अन्दर इन्द्रशक्ति रहती ही है । अन्य प्राणी इसका विकास अपने अन्दर नहीं कर सकते और मनुष्य अनुष्ठानादिद्वारा अपनी आन्तरिक इन्द्रशक्तिका विकास कर सकते हैं । अपनी इस शक्तिका विकास किस रीतिसे हो सकता है, इसका विचार इस पुस्तकमें किया है । वेदकी यह विद्या गूढ है, परंतु जितनी समझमें आगई उतनी यहां रखी है । आशा है कि पाठक इसकी अधिक खोज करके और साथ साथ अनुष्ठानद्वारा अनुभव देखके इस विद्याको परिपूर्ण बनानेका श्रेय संपादन करेंगे ।

१ वैशाख
संवत् १९९१

निवेदक,
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल,
औंध,(जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

इंद्रशक्तिका विकास।

(१) मनुष्यजीवनका उद्देश्य।

मनुष्यका जीवन इसलिये है कि, वह अपने अन्दरकी दैवी शक्तिका विकास करे। प्रत्येक मनुष्यके अंदर बीजरूपसे अनेक दैवी शक्तियां हैं और प्रत्येक शक्ति बीज रूप होनेके कारण उसका विकास संभवनीय है। हरएक बीज, बीज होनेके कारण ही, आंतरिक शक्तियोंके विकासके लिये ही निर्मित हुवा है। अनुकूल भूमि और योग्य जलवायुकी उत्तम परिस्थिति प्राप्त होतेही उस बीजका विकास होनेका प्रारंभ होता है। स्वभावधर्मसे ही इस प्रकार हरएक बीज विकसित होने लगता है, परंतु कई बीज भूनने-वालेके हाथमें चले जाते हैं और भूने जाते हैं। इस प्रकार उनके विकास-का मार्ग बंद हो जाता है। परंतु कई बीज उत्तम मालीके पास पहुंचनेके कारण योग्य खाद आदिके विशेष प्रबंधसे इतने उन्नत और विकसित होते हैं कि, उनको देखकर देखनेवालेके मनमें बडाही आश्चर्ययुक्त संतोष उत्पन्न होता है!!!

येही तीन अवस्थाएं मनुष्यके लिये भी होती हैं। हरएक मनुष्यमें दैवी शक्तियोंके बीज हैं। कई मनुष्य योग्य शिक्षाके अभावके कारण यथाकथं-

चित् स्वयमेव बढते हैं। कई लोगों की शक्तियां गुलामी की भयानक आगसे भूनी जाती हैं, और उनके विकासमें प्रतिबंध होता है। परंतु कई मनुष्य योग्य गुरुके पास योग्य राजाके सुयोग्य शिक्षाप्रबंधमें रहनेके कारण विशेष विकसित होते हैं। इस भूमंडलके अनेक देशोंमें जो जनता विभक्त हुई है, उसमें ये त्रिविध जन पाठकोंको दिखाई देंगे। तात्पर्य यह है कि मनुष्यके विकासके लिये उत्तम शिक्षाप्रबंधकी अत्यंत आवश्यकता है। इसीलिये कहा है कि—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

कठ. ३।४१

" उठो, जागो और श्रेष्ठोंको प्राप्त करके उत्तम बोध प्राप्त करो। " अर्थात् सुयोग्य गुरुसे ही उत्तम ज्ञान प्राप्त करके सावधानताके साथ प्रयत्न करनेसे शक्तिका विकास संभव है।

(२) अपने अंदरकी शक्तियाँ।

पाठक जानते ही हैं कि अपने अंदर अनेक शक्तियां हैं। आंखमें सूर्यशक्ति है, मुखमें आग्नेयी शक्ति है, नाकमें अश्विनी शक्ति है, हृदयमें इंद्रशक्ति है, फेंफडोंमें रौद्री शक्ति है, यहां ही मारुत शक्ति है, उसी प्रकार हरएक अवयवमें एक एक देवताकी शक्ति बीजरूप अथवा अंशरूप है। जिस प्रकार आगकी एक चिनगारी होती है, उसी प्रकार सूर्यादि विशाल देवताओंकी एक एक चिनगारी हमारे देहमें अपने योग्य स्थानमें रही है। इस चिनागारीको प्रदीप्त करना ही उस शक्तिका विकास है।

बीजरूप शक्तियां अनेक हैं और हरएक शक्तिका विकास करनेके मार्ग भी भिन्न ही हैं। एक एक शक्तिके विकासके विषयमें जो अनंत बोध वेदमें आगये हैं, उनका विचार करनेके लिये बडे बडे ग्रंथ लिखनेकी आवश्यकता है। यह विषय योगका है और वास्तवमें देखा जाय, तो " योगशास्त्र शक्तिविकासका ही एक विशेष शास्त्र है। " मनुष्यजीवनकी

उन्नतिके साथ इसीलिये योगका घनिष्ठ संबंध है। योग, संयोग, नियोग, वियोग, अधियोग, सुयोग, प्रयोग, उद्योग, अभियोग, उपयोग, अतियोग आदि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे वास्तवमें योगके ही रूप हैं; परंतु उनके अर्थ विभिन्न हुए हैं, इसलिये अब उनका संबंध योगके साथ स्पष्ट रूपसे दिखाई नहीं देता !! तथापि उनके मूल भाव देखनेपर उनका संबंध योगके साथ ही विदित हो सकता है। अस्तु।

तात्पर्य यह है कि "मनुष्यकी शक्ति विकसित करनेका नाम योग है," और हरएक शक्ति विकसित करनेके प्रयोग भिन्न भिन्न हैं, यही बात यहां देखनी और ध्यानमें धारण करनी चाहिए।

(३) अपने अंदरकी इन्द्रशक्ति।

जिस प्रकार अपने अंदर विविध देवताओंकी अंशरूप शक्तियां हैं, उसी प्रकार " देवराज इंद्रकी अंशरूप शक्ति भी हमारे अंदर विद्यमान है।" बाह्य जगत्में सब देवताएं गौण हैं और इंद्र मुख्य है; इसी लिये उसको देवराट् अथवा "देवराज" कहते हैं। ठीक इसी प्रकार अपने शरीरमें भी विविध देवताओंके अंश हैं और उनका मुख्य अधिष्ठाता इंद्रका अंश है। दोनों स्थानोंमें इंद्रका मुख्य होना एक जैसा ही है।

इसी इंद्रकी शक्ति इंद्रियोंमें आकर कार्य करती है। जिस प्रकार राजाकी शक्ति ओहदेदारोंमें आकर संपूर्ण ओहदेदारोंका कार्य करती है; ठीक इसी प्रकार देवराज इंद्रकी शक्ति इंद्रियोंमें आकर कार्य कर रही है; इसी लिये इन अवयवोंको "इंद्रिय" कहते हैं। इंद्रिय शब्दका अर्थही यह है। देखिये—

इंद्रियमिंद्रलिंगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिंद्रदत्तमिति वा ॥

पाणिनीय अष्टा. ५।२।९३

"(१) जो इंद्रका चिह्न है, (२) जो इंद्रसे दृष्ट है, (३) जो इंद्रने उत्पन्न किया है, (४) इंद्र जिसका सेवन करता है, (५) इंद्रने जो दिया है, वह इंद्रिय है।"

हमारी इंद्रियां ही अंदरकी इंद्रशक्तिको जाननेके चिह्न हैं, इन चिह्नोंसे ही सूचित होता है कि इनके मध्यस्थानमें इंद्र महाराज बैठे हैं। जो इन्द्र अंदर बैठा है, वह इन इंद्रियोंके सुराखोंसे अपने अभीष्ट विषयको देखता है। अपने अभीष्ट विषयको देखने और प्राप्त करनेके लिये ही उस इंद्रने ये सुराख अथवा इंद्रिय बनाये हैं। इन इंद्रियोंसे ही वह सेवा लेता है। तात्पर्य इंद्रकी दी हुई शक्तिही यहां है। ये भगवान् पाणिनी महामुनिके दिये हुए अर्थ देखने और विचार करने योग्य हैं। इनसे निश्चित हो जाता है कि, मध्यमें इंद्र है और उसकी शक्तियां चारों ओर फैलकर इंद्रियोंमें कार्य कर रही हैं—

आंख

नाक कान

मुख हाथ इंद्र जिव्हा त्वक्

शिस्न गुदा

पांव

देवराज इंद्रके चारों ओर इस प्रकार अन्य देव अर्थात् इंद्रियां रहतीं हैं। इसीलिये "वेद" और उपनिषदोंमें इंद्रियोंके लिये "देव" शब्द प्रयुक्त होता है, क्योंकि देवोंका राजा अंदर है और अन्य देव बाहिर हैं। अस्तु। इन इंद्रियोंसे आंतरिक इंद्रका ज्ञान होता है। इस इंद्रकी जो शक्ति, अथवा सच कहा जाय, तो अंशरूप शक्ति, जो हमारे अंदर है, उसका विकास करना चाहिये। इसका विकास करनेके लिये ही यह मनुष्यजन्म है। यदि इस जन्ममें मनुष्यने इस बीजरूप शक्तिका विकास करनेका यत्न किया, तो इस जन्मका सार्थक हुआ। नहीं तो जन्म व्यर्थ गया, ऐसा ही समझना चाहिये।

(४) इन्द्र और स्वर्ग.

इंद्र स्वर्गमें रहता है, संपूर्ण देव उसके साथ रहते हैं, यह बात सब लोग जानते हैं। यदि इंद्रियां ही देवगण हैं और देवोंका राजा उनके बीचमें हृदयमें निवास करता है, तो यह निश्चित ही है, कि सच्चा स्वर्गधाम हमारे हृदयमें ही है। जहां इंद्र है, वहां ही स्वर्ग है। हमारे हृदयमें इंद्र है, इसलिये हृदयके अंदरही स्वर्गधाम है। इसकी सिद्धता करनेके लिये प्रमाणांतर देनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, उक्त बातोंका विचार करनेसे ही इसकी सिद्धता होती है। वेदमें भी यह बात कही है—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ॥
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अथर्व० १०।२।३१

"आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह अयोध्या देवोंकी नगरी है। उसमें जो हिरण्मय कोश है, वही तेजसे परिपूर्ण स्वर्ग है।"

दो आंख, दो नाक, दो कान, एक मुख, शिस्न और गुदा ये नौ द्वार इस "शरीररूपी अयोध्या नगरी" के हैं। इस नगरीमें हृदयस्थानमें एक कोश है, जो तेजसे परिपूर्ण स्वर्ग है।

इस शरीरमें पूर्वोक्त नौ स्थानोंमें इंद्रिय शक्तियां हैं। इसको "इंद्रिय-संस्थान" कहते हैं। मंत्र में जो आठ चक्रोंका वर्णन है, वह "मज्जा-तंतु-संस्थान" के आठ केंद्र हैं। जिस प्रकार एक एक इंद्रियमें अद्भुत शक्ति विद्यमान है, उसी प्रकार हरएक मज्जाकेंद्रमें विलक्षण शक्ति है! हरएक स्थानकी शक्ति विकसित करनेके उपदेश वेदमें हैं, इनकाही विचार इस लेखमें करना है। चूंकि संपूर्ण केंद्रोंमें एक ही इंद्रशक्ति पहुंचती है और वहांका कार्य करती है, इसलिये एक इंद्रशक्तिका विकास होनेसे, उसका परिणाम संपूर्ण शक्तिकेन्द्रोंपर होता है। इससे पाठकोंके मनमें यह बात आ चुकी होगी, कि इंद्रशक्तिका विकास करना मुख्य है और इसका ही

विचार मुख्यतया इस लेखमें करना है । तथापि जिन लोगोंको विशेष शक्तिकेंद्रोंका ही विकास अभीष्ट है, वे अपने अभीष्ट केंद्रका ही विकास कर सकते हैं । इस बातका विचार किसी अन्य लेखमें किया जायगा । यहां इस मुख्य इंद्र शक्तिके विकासका ही विचार करना है ।

(५) इंद्रके गुणधर्म ।

अपने अंदर हृदयस्थानमें जो चालक इंद्रशक्ति है, उसके गुणधर्म देखने चाहिये । उस शक्तिके गुणधर्म जाननेके विना उसका विकास करना अथवा विकासका प्रयत्न करना भी अशक्य है । इंद्रदेवताके सूक्तोंमें इसी के गुणधर्म वर्णन किये हैं, और उनका संक्षेपसे वर्णन यास्काचार्यजीने अपने निरुक्तमें किया है । यही निरुक्तका संक्षिप्त वर्णन यहां देखिये—

> इन्द्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति वेरां दधातीति वेरां दारयत इति वेरां धारयत इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वेन्धे भूतानीति वा । तद्यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते । इदं करणादित्याग्रयणः । इदं-दर्शनादिन्यौपमन्यवः । इन्दते वैश्वकर्मण, इञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा दारयिता वा यज्वनाम् ॥
>
> निरुक्त ४ । १ । ८

" इरा " शब्दके अर्थ " (१) भूमि, (२) वाणी, (३) जल, (४) अन्न, (५) आनंद, सुख, " ये हैं । इन अर्थोंको लेकर उक्त वचनका अर्थ कीजिये और देखिये कि, इसके कैसे अर्थ बनते हैं—

(१) इरां दृणाति इति इन्द्रः ।

भूमिका विदारण करनेवाला इंद्र है । जिस समय बीज भूमिमें बोते हैं, उस समय जलके साथ संबंध होनेसे बीजको तथा भूमिको फाडकर अंकुर ऊपर आता है । इतना कोमल अंकुर होते हुए भी वह कठिण भूमिको

फाडकर ऊपर उठता है, यह जिस शक्तिसे होता है वह " इन्द्रशक्ति " है। हरएक बीजमें इन्द्रशक्ति रहती है। यह इंद्रशक्ति बीजमें ही कैद या बंद रहना नहीं चाहती। अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही कठिनसे कठिन भूमिको फाडकर और सब प्रतिबंधोंको तोडकर ऊपर उठती है!! यही इंद्रशक्तिका विकास है। जिस पिता वृक्षका वह बीज होता है, उस पिताके समान अथवा उससे भी अधिक विस्तृत बननेकी इच्छाशक्ति प्रत्येक बीजके इंद्रके अंदर है, और इसलिये वह भूमिके प्रतिबंधको तोडकर ऊपर उठनेका प्रयत्न करती है।

(२) इरां दारयत इति इंद्रः।

भूमिको फाडनेवाला इंद्र होता है। इसका भी तात्पर्य ऊपर लिखा ही है।

(३) इरां ददाति, दधाति, धारयते वा स इन्द्रः।

जो जल देता है और धारण करता है, वह इंद्र है। मेघस्थानीय विद्युत् इस प्रसंगमें इंद्र है। मेघमें जल उत्पन्न करना, मेघोंसे जलकी वृष्टि करना आदि कार्य इस बिजुलीके हैं।

(४) इंदवे द्रवति, इन्दौ रमते इति इंद्रः।

इंदुके लिये जल छोडता है और इन्दुमें रमता है, वह इंद्र है। " इंदु " का अर्थ है— " सोम, चंद्र, रस, बिंदु "। यहां रस अभीष्ट है। वनस्पतियोंका रस इंदु है। वह वनस्पतिके रसके लिये स्रवता है और वनस्पतिके रसमें रमता है, यह कार्य इंद्रका है। वनस्पतिके रसमें इंद्रशक्ति रमती है, यह बात यहां पाठक ध्यानमें धारण करें,क्योंकि इंद्रशक्तिके विकासके अनुष्ठानमें इस बातका विशेष संबंध आनेवाला है। (इसी लेखमें आगे " वारुणी-पान " का प्रयोग देखिये।)

(५) इन्धे भूतानि इति इन्द्रः।

भूतोंको प्रदीप्त करता है, वह इंद्र है। पदार्थमात्रका रूप इसी इंद्र-

शक्तिके कारण है। विशेषतः पदार्थका तेज इन्द्रके कारण ही है। सूर्यचंद्रादिकोंका तेज, वनस्पतियोंका जीवन, पशुपक्षी और मनुष्योंमें जो जीवनकी तेजस्विता है, जो मरनेके बाद नहीं होती, वह इंद्रका ही तेज है। यही " जीवनकी बिजुली " है, जो प्राणियों और वृक्षोंमें दिखाई देती है।

(६) प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येंद्रत्वम् ।

प्राणोंसे जो तेज उत्पन्न होता है, अथवा प्राणोंसे जो बढता है, वही इंद्रत्व है। पाठक यहां इस बातका स्मरण रखें, कि इंद्रशक्तिका विकास करनेके अनुष्ठानमें प्राणायामका विशेष महत्त्व है, क्योंकि प्राणोंसे ही इंद्रकी दीप्ति बढानी है।

(७) इदं करणात् इन्द्रः ।

यह बनाता है, इसलिये इसको इन्द्र कहते हैं। इस शरीरको करनेवाला तथा इस शरीरमें शक्तिकी न्यूनाधिकता सिद्ध करनेवाला इंद्र है। इसी लिये इन्द्रशक्तिका विकास करनेसे मनुष्यकी शक्ति बहुत उन्नत होती है।

(८) इदं दर्शनात् इन्द्रः ।

इंद्र इसको देखता है। दर्शक और द्रष्टा इन्द्र है। यहां देखनेवाला तथा करने और बनानेवाला इंद्र है।

(९) इंदति ऐश्वर्यवान् भवतीति इंद्रः ।

ऐश्वर्यसे युक्त होता है, वह इंद्र है। प्रभुत्व स्वामित्व आदि भाव इस अर्थमें हैं। देवोंका यह राजा है, यह बात पूर्व स्थलमें बताई गई है, इसलिये इस अर्थके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं है।

(१०) इन् शत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा इन्द्रः ।

शत्रुओंका विदारण अथवा नाश करनेवाला इंद्र है। अर्थात् संपूर्ण विरोधियोंको दूर भगानेवाला यह है। इसका इतना सामर्थ्य है। शरीरमें

रोग, व्याधी, बुरे विचार, आदि अनेक शत्रु हैं। उनको दूर करनेकी शक्ति इस इंद्रमें है। इसीलिये इस इंद्र की शक्ति विकसित करनी चाहिये, जिससे संपूर्ण आपत्तियोंका नाश होगा और परम आनंद प्राप्त होगा। यही विकास का महत्त्व है।

पूर्वोक्त व्युत्पत्तियोंका आध्यात्मिक भाव ही इस लेखमें अभीष्ट है, इसलिये उतना ही यहां दिया है। पूर्वोक्त व्युत्पत्तियोंको परमात्मविषयक तथा अन्य विषयोंके अर्थ यहां अनावश्यक होनेके कारण उनका यहां विचार नहीं दिया। उनको पाठक स्वयं जान सकते हैं। इन अर्थोंके अतिरिक्त इंद्र शब्दके निम्न अर्थ भी यहां देखने चाहियें—

(१) स्तनयित्नुरेवेन्द्रः। बृ. उ. ३।९।३
(२) इन्धं सतमिंद्र इत्याचक्षते। बृ. उ. ४।२।२
(३) इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा। प्र. उ. २।४
(४) तमिदंद्रं संतमिंद्रमित्याचक्षते। ऐ. उ. ३।१४

(१) मेघोंमें गर्जना करनेवाली विद्युत् ही इंद्र है, (२) प्रदीप्त होता है उसको इंद्र कहते हैं, (३) तेजसे युक्त इंद्र प्राण ही है। (४) इस शरीरमें छिद्र करनेके कारण इसको इंद्र कहते हैं।

ये सब अर्थ इंद्रकी विलक्षण शक्ति बता रहे हैं। वनस्पतिके रसमें, मेघोंमे, सूर्यचंद्रमें, तथा प्राणियोंमें इस प्रकार इंद्रशक्ति है। इसका अनुभव हरएकको करना चाहिये। इंद्रशक्तिके विकास के लिये इसके विज्ञानकी अत्यंत आवश्यकता है। इस प्रकार इंद्रके गुणधर्म जाननेके पश्चात् अब इंद्रके स्थानका विचार करेंगे—

(६) इंद्र–लोक।

जहां इंद्रका स्थान है, वही इंद्रलोक है, इंद्र देवोंका राजा है और देव इंद्रियां ही हैं; इसलिये यह स्पष्ट होता है कि इंद्रियोंके मध्यमें किसी स्थानमें इंद्रका लोक है। इसीलिये इसका मध्यस्थान निरुक्तमें कहा है—

वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः॥ निरु. दै. १।२।१

" वायु तथा इंद्र अंतरिक्षस्थानीय देवताएं हैं।" अंतरिक्ष ही मध्य-स्थान है। जो बाह्य जगत्में " अंतरिक्ष " हैं वही शरीरमें हृदय, " अंतः-करण " आदि है। इस विचारसे भी सिद्ध हो रहा है कि, इंद्रशक्तिका मुख्य केंद्रस्थान " हृदय " है। इस विषयमें और निम्न वचन देखिये—

अंतरेण तालुके य एष स्तन इवालंबते सेंद्रयोनिः॥
तै. उ. १।६।१

" तालुस्थानके अंदर ऊपर मस्तिष्कमें स्तनके समान जो एक भाग है, वह इंद्रयोनि अर्थात् इंद्रशक्तिका उत्पत्तिस्थान है तथा।"

कस्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चेतींद्रलोकेषु गार्गीति॥
बृ.उ.३।६।१

" देवलोक इंद्रलोकके आधारसे रहे हैं।" अध्यात्ममें देवका अर्थ इंद्रिय है, इसलिये " देवलोक " का अर्थ " इंद्रियस्थान " है। इन इंद्रियस्थानोंका संबंध पूर्वोक्त इंद्रस्थानसे है, जो मस्तिष्कमें स्तन जैसा है और जो तालुके ऊपर है,ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है। इन वचनों का विचार करनेसे पता लगता है कि, इंद्रशक्तिका उत्पत्तिस्थान यह मस्तकमें तालुके ऊपरका जो स्तन जैसा भाग है, वह है और उसका कार्य करनेका स्थान हृदय है। तात्पर्य यह है कि हृदयसे लेकर मस्तकतक जो स्थान है, वह " इंद्रलोक " है। इसलिये यदि इंद्रशक्तिका विकास करना है, तो उक्त स्थानकी शक्तियोंकी वृद्धि करना चाहिये।

पूर्वोक्त निरुक्तके वचनमें कहा ही है कि, इंद्र और वायु ये दो देव मध्य-स्थानमें रहते हैं। दोनोंका निवास एकत्र है। वेदमें इस बात की द्योतक देवता " इंद्रवायू " है। अध्यात्ममें अपने शरीरमें भी यह बात प्रत्यक्ष है। फेफडोंमें प्राणवायु रहता है और हृदयमें इंद्र रहता है। तात्पर्य छातीमें ही ये दोनों देव रहते हैं। " रुद्र, वायु, प्राण, मरुत् " ये शब्द प्राणवाचक

हैं । इससे इंद्रवायू, इंद्रामरुतौ आदि द्विवचनी देवताओंका आध्यात्मिक अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है । इतने लेखसे पाठकोंको पता लगा ही होगा कि इंद्रशक्तिका मूलकेंद्र कहां है और उसकी व्याप्ति कहांतक है ।

(७) इन्द्रकेपर्याय शब्द ।

साधारणतः संस्कृत भाषाका और विशेषतः वैदिक मंत्रोंका प्रत्येक शब्द विशेष गूढ अर्थ धारण करता है । प्रत्येक शब्द एक अथवा अनेक विशेष गुणोंका बोध करता है; इसलिये इंद्रवाचक शब्दोंका यहां मनन करना आवश्यक है। इससे इंद्रशक्तिके गुणधर्मोंका विशेष ज्ञान मिल सकता है, और उसके विकासका मार्ग भी ज्ञात हो सकता है । इसलिये अन्य विचार करनेके पूर्व इंद्रके पर्यायशब्दोंका ही विचार यहां करेंगे ।-

(१) मरुत्वान्= मरुत् जिसके साथ होते हैं, अर्थात् प्राण जिसके साथ रहते हैं । प्राणोंसे युक्त ।

(२) मघवान्= सुख, धन, ऐश्वर्य आदिसे युक्त ।

(३) विडौजाः= (विट्+ओजाः) प्रजाओंमें जिसका बल है । प्राणियोंमें जिसकी शक्ति दिखाई देती है । अथवा व्यापक शक्तिवाला ।

इसका पाठांतर " बिडौजाः " ऐसा भी है । इसका अर्थ (बिड्+ओजाः) तोडनेवाला, फाडनेवाला, बल जिसके पास है, यह है । इस अर्थकी तुलना पूर्वोक्त नैरुक्त अर्थके साथ कीजिये ।

(४) शुनासीरः = (शुनः) वायु अथवा प्राण और (सीरः शीरः) सौर्य तेज, अर्थात् प्राण और तेजसे युक्त ।

(५) पुरुहूतः = बहुत प्रशंसनीय ।

(६) पुरंदरः = स्थूल सूक्ष्मादि शरीरोंका भेदन करके अपनी शक्तिका विकास करनेवाला । प्रतिबंधोंको तोडकर बाहर आनेवाला ।

(७) जिष्णुः = विजयी।
(८) शक्रः = शक्तिमान्।
(९) शतमन्युः = (शत) सौ (मन्युः) शक्तियोंसे युक्त।
(१०) शतक्रतुः = सौ वर्षपर्यंत यज्ञ करनेवाला।
(११) सुत्रामा = (सु) उत्तम (त्रामा) रक्षक।
(१२) वृषाः = बलवान्।
(१३) स्वराट् = अपने बलसे चमकनेवाला।
(१४) आखंडलः = भेदन करनेवाला।
(१५) तुराषाड् = त्वरासे युक्त, वेगवान्।

ये इंद्रके नाम इंद्रशक्तिके गुणधर्मोंका भाव बता रहे हैं। जो इंद्रशक्ति हृदयमें है, उसमें (१) प्राण धारण करनेकी शक्ति है, इसलिये इस शक्तिके विकसित होनेसे दीर्घकालतक प्राणोंकी धारणा हो सकती है; और दीर्घायु प्राप्त हो सकती है। (२) इसमें सुख होता है, इसलिये इंद्रशक्तिके विकाससे मन आनंदपूर्ण हो जाता है और अनंत आपत्तियोंमें उसके मुख-पर प्रसन्नता दिखाई देती है। (३) सब प्राणियोंमें जो बल है, वह इसीका होनेके कारण इंद्रशक्तिका विकास होनेसे बल बढ जाता है। (४) प्राण और तेज इंद्रके साथ सदा रहते हैं, इसलिये इंद्रशक्तिका विकास होनेसे प्राणका बल बढता है, ओर तेजस्विता भी बढत है। (५) यह अद्भुत शक्तिशाली होनेसे ही सब विद्वान् इसकी प्रशंसा करते हैं। जिसके अन्दर विलक्षण इंद्रशक्तिका विकास होता है, उसकी भी सर्वत्र प्रशंसा हो जाती है। (६) इसीकी प्रबल शक्तिसे शरीरोंमें सुराख होकर इंद्रियां बनी हैं, इसलिये निश्चय हो जाता है कि यह इंद्रशक्ति अधिक विकसित हो जानेसे इंद्रियोंकी शक्तियां भी अधिकाधिक विकसित होती हैं। (७) इंद्र सदा विजयी है, अर्थात् इसका मुकाबला इसके शत्रु नहीं कर सकते। इसलिये स्पष्ट है कि इंद्रशक्तिके विकसित होनेसे उस मनुष्यके भी संपूर्ण शत्रु नष्टभ्रष्ट

हो जांयगे, रोग दूर होंगे और उसका सर्वत्र विजय होगा। (८) इतना शक्तिमान् यह है। (९-१०) सौ वर्ष इस शरीरमें रहकर इसको अनेकानेक पुरुषार्थ करने हैं। (११) इससे उत्तम संरक्षण होता है, (१२) बल बढता है और (१३-१५) दूसरेके सहारेके विना अपनेही बलसे वह पुरुष, कि जिसमें इंद्रशक्तिका विकास हुआ है, अल्प समयमें बहुतही कार्य करता हैं, और उसका पुरुषार्थ परिणामकारी होता है।

इतने अनुमान इंद्रके पर्यायशब्दोंसे हमें विदित हो सकते हैं। इंद्रका प्रत्येक शब्द एक अथवा अधिक गुणोंका प्रकाश कर रहा है, इसलिये जो गुण उक्त शब्दोंसे व्यक्त होते हैं, वे इंद्रमें हैं। यदि ये गुण इंद्रमें हैं, तो इंद्रशक्तिका विकास होनेसे इन गुणोंका विकास होना आवश्यकही है। जिस प्रकार मीठे आमके बीजका विकास होकर, उसका वृक्ष बननेपर उसको मधुर फल आते हैं; ठीक उसी प्रकार इंद्रका जो अंशरूप बीज हमारे अंदर है, उसका उतना विकास होनेपर उसके वैसेही गुण होंगे, जैसे मूल इंद्रशक्तिमें होते हैं। शक्तिविकासका यही अर्थ है।

पूर्वोक्त इंद्रवाचक शब्दोंके जो अर्थ दिये हैं, वे अपने विषयके लिये आध्यात्मिक दृष्टिसे जितने आवश्यक हैं, उतने ही दिये हैं। आत्मपरमात्मविषयक अर्थ उन शब्दोंमें हैं, उनका इस विषयके साथ संबंध न होनेसे यहां आवश्यक नहीं हैं। अस्तु। इतने विचारसे पाठकोंको इंद्रशक्तिकी ठीक कल्पना हो गई होगी। इंद्रशक्तिका स्थान हृदय हे, उसका उत्पत्तिस्थान मस्तिष्कमें स्तन जैसा अवयव हैं और यह शक्ति विकसित होकर पूर्वोक्त गुणधर्मोंसे युक्त होती है। इस शक्तिका विकास होनेसे मनुष्यका सामर्थ्य बहुतही बढ जाता है।

(८) इंद्रशक्तिके विकासके चिह्न।

इंद्रशक्तिका विकास होनेसे किन किन शक्तियों की, किस प्रकार उन्नति होती है, इसका पता अंशरूपसे इससे पूर्व बतायाही है, अब उस विकासके बाह्य चिह्नोंका थोडासा विचार करना है।

(१) जिसके अंदर इंद्रशक्तिका विकास होने लगता है, उसका आरोग्य पूर्वकी अपेक्षा अच्छा रहने लगता है, रोग प्रायः दूर रहते हैं और नीरोगताका आनंद उसके अनुभवमें रहता है ।

(२) शरीरलाघव इतना हो जाता है और उसमें उत्साह, स्फूर्ति तथा अंगपाटव इतना हो जाता है कि, उसको थकावट आती ही नहीं । जिस अवस्थामें दूसरे मनुष्य थक जाते हैं, उस अवस्थामें भी उसका कार्य करनेका सामर्थ्य कम न होता हुआ बढता ही जाता है ।

(३) उसके उत्साहके साथ शारीरिक शक्तिका कोई भी विशेष संबंध नहीं होता । उसकी शारीरिक शक्ति कम हो, अथवा अधिक हो, उसका उत्साह एक जैसा रहता है । इंद्रशक्तिका विकास जिनमें हुआ होता है, वे शरीरसे निर्बल भी हुए, तभी उनकी मानसिक उत्साहशक्ति बहुतही विलक्षण होती है ।

(४) उनके आंखमें विलक्षण तेज दिखाई देता है, तथा उनका सब इंद्रियसंघात निर्दोष रहनेके कारण उनको इंद्रियसंयम सुगम होता है ।

(५) उसके विचार, वक्तृत्व और पुरुषार्थमें जीवित भाव दिखाई देता है । निरुत्साह उसके पास नहीं ठहर सकता और वह जनतामें एक विलक्षण स्फूर्तिका केंद्र बनकर रहता है ।

(६) सच्ची जागृति उसके जीवनमें दिखाई देती है । वह मृत्युसे भी नहीं डरता और किसी भी प्रलोभनमें नहीं फंसता । उसका संपूर्ण जीवन " धीरोदात्त " वृत्तिसे परिपूर्ण रहता है ।

(७) उसका वक्तृत्व थोडा ही होता है, परंतु उसका परिणाम बडा ही गहरा और चिरकाल रहनेवाला होता है । शब्द गिनेचुने होते हैं, तथापि गंभीर अर्थसे परिपूर्ण होते हैं ।

(८) उसके शब्दमें वीर्य रहता है, विचारोंमें अपूर्वता रहती है, तथा कृतिमें विलक्षण औदार्य रहता है ।

(९) उसकी शक्तियां विकसित होतीं हैं, परंतु उसकी वृत्ति उच्छृंखल नहीं होती, वह शांति और गंभीरताका पुतला, धैर्य और वीर्यका आधारस्तंभ, नवजीवनका स्रोत, वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय सुधारका जनक, उत्साहमय जीवनका चालक और सार्वजनिक भावका प्रचारक होता है।

(१०) सारांश यह है कि, वह केवल अपने लिये ही जीवित नहीं रहता, प्रत्युत उसका जीवन परोपकारपूर्ण " मित्र-दृष्टिका आदर्श " रूप रहता है।

इस प्रकार थोडेसे चिह्न हैं जो इंद्रशक्तिके विकास होनेके समय आरंभमें ही दिखाई देते हैं। इन गुणोंका प्रादुर्भाव होनेसे पाठकोंको पता लग सकता है कि, इंद्रशक्ति विकसित होने लगी है। इसके सिवाय अन्यभी बहुतसे चिह्न हैं, उनका विचार आगे क्रमशः हो जायगा।

(९) इंद्रतत्त्व क्या है ?

जगत्में शक्तियुक्त जो जो तत्त्व हैं उनके अल्प अंश हमारे शरीरमें रहे हैं। जगत्में अनेक तत्त्व हैं, उनमेंसे इंद्रतत्त्व भी एक है और यह तत्त्व सब तत्त्वोंमें मुख्य है। आत्माको छोडकर सब अन्य तत्त्व इसी इंद्रतत्त्वके आधारसे रहते हैं। एक मूल मायाशक्ति इस इंद्रके ऊपर है, अन्य सब शक्तियां इसके नीचे और इसके आधीन हैं। इसलिये इसका बल बढ जानेसे अन्य शक्तियां जो इसके नीचे हैं, बलवान् होतीं हैं और इसका बल घटनेसे संपूर्ण शक्तियां निर्बलसीं हो जातीं हैं।

जिनके जीवनमें उदासीनता दिखाई देती है, जो आलसी होते हैं, सुस्ति जिनपर छाई रहती है, जो पुरुषार्थका जीवन व्यतीत नहीं करते, जिनके आंख और मुख निस्तेज और मरियलसे होते हैं, समझ लीजिये कि वहां इंद्रशक्ति घट रही है। इस प्रकार जिस इंद्रशक्तिके घट जानेसे मनुष्य मनुष्यत्वसे गिरता है और बढ जानेसे अपने मनुष्यत्वकी उन्नति करता है, उस इंद्रका वर्णन वेदमें सैंकडों मंत्रोंमें हुआ है। इसलिये विचार करके

देखना चाहिये कि उसका स्वरूप क्या है। पूर्वोक्त उपनिषद्वाक्यके अंदर स्पष्ट कहा है कि, " विद्युत् ही इंद्र है। " इसी लिये " इंद्र-वज्र " का अर्थ विद्युत्का आघात समझा जाता है। विश्वव्यापक सूक्ष्म विद्युच्छक्ति ही इंद्र है, परंतु जो विद्युत् दीप जलाती है और यंत्रोंको घुमाती है, वह इस सूक्ष्म इंद्रशक्तिका निर्जीव स्थूल स्वरूप है। यहाँ जिस इंद्रशक्तिका विचार चल रहा है, वह निर्जीव स्थूल शक्ति नहीं है, प्रत्युत सजीव सूक्ष्म इंद्रशक्ति है, जो चेतन सृष्टिके अंदर अंशरूपसे विराजमान होकर विलक्षण कार्य कर रही है !!!

बाह्य जगत् की संपूर्ण शक्तियां हमारे देहमें आकर रहती हैं, यह वैदिक सिद्धांत है। " पिंड–ब्रह्मांडकी समता " इसी दृष्टिसे है। ब्रह्मांडमें जो विशाल रूपसे अनेक तत्त्व हैं, वेही सूक्ष्म रूपसे शरीरमें हैं। इसी प्रकार विश्वव्यापक सजीव सूक्ष्म इंद्रशक्ति अंशरूपसे हमारे शरीरमें रही है, यह एक अल्पसी चिनगारी है। इस छोटीसी चिनगारीकी शक्ति बढानी चाहिये, इसी उद्देश्यसे वैदिक धर्ममें योगशास्त्रकी प्रवृत्ति हो गई है और विविध उपायोंकी योजना ऋषिमुनियोंने की है।

इस शक्तिके विकाससे क्या हो सकता है, इसका वर्णन उपनिषद्में निम्न प्रकार आया है।—

शतं देवानामानंदाः। स एक इंद्रस्यानंदः॥ तै.२।८।१

" देवोंके सौ आनंदोंके बराबर इंद्रका एक आनंद है। " इसका तात्पर्य अध्यात्ममें यह है कि, इंद्रियोंके सौ आनंदोंके समान इंद्रका एक आनंद है। मनुष्योंको जो सुख इंद्रियशक्तियोंके विकाससे हो सकता है, उससे सौगुणा अधिक सुख इंद्रशक्तिके विकाससे मनुष्य प्राप्त कर सकता है !!! यदि मनुष्य सुख और आनंद ही चाहता है, तो उसको उचित है कि, वह एक गुणा सुख प्राप्त करनेकी अपेक्षा सौगुणा आनंद प्राप्त करनेका यत्न करे। सौगुणा आनंद प्राप्त करनेके उपाय ही इंद्रसूक्तोंमें वर्णन किये हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत इससेभी अधिक आनंद प्राप्त करनेके

उपाय हैं, परंतु यहां इस लोकके आनंदका ही विचार करना है। इसलिये इंद्रलोक– " इंद्रतत्त्व " का निश्चय करते हुए यह यहां बताया है, कि यह सूक्ष्म सजीव अथवा जीवनपूर्ण विद्युत्तत्त्व है, और वह सर्वत्र व्यापक है।

मनुष्यके जीवनके लिये सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वोंकी आवश्यकता अधिकाधिक है। अन्न, जल और वायु ये तीन पदार्थ मानवी जीवनको सहायक हैं। अन्न स्थूल है, उससे जल सूक्ष्म और उससे अति सूक्ष्म वायु है, इसीलिये अन्नसे जल और जलसे वायुकी आवश्यकता मनुष्यके लिये अत्यधिक है। अन्न न मिलनेपर मनुष्य तीन मासतक प्राणधारण कर सकता है; जल न मिलनेपर मनुष्य केवल सप्ताह तक मुश्किलसे प्राणधारण कर सकता है, तथा प्राणवायु न मिलनेपर थोडसे क्षणोंमें मनुष्य मर सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि, स्थूल तत्त्वकी अपेक्षा सूक्ष्म तत्त्वकी आवश्यकता मनुष्यके लिये कितनी अधिक है !! इंद्रतत्त्वके साथ जीवनका सत्त्व रहनेके कारण इसकी आवश्यकता सबसे अधिक है। यह बात पूर्वोक्त युक्तिसे ही सिद्ध हो सकती है। इस लिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

जीवनके लिये जिसकी अत्यधिक आवश्यकता है, उस तत्त्वका अपने अंदर विकास करनेसे अपना जीवन सुखमय और आनंदपूर्ण हो सकता है, यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है। इसीलिये इंद्रशक्तिका विकास करनेकी आवश्यकता है।

(१०) इंद्र और सूर्यका प्रभाव।

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ ऋ० ८।१२।३०

" (यदा) जिस समय (दिवि) द्युलोकमें (अमुं सूर्यं) इस सूर्यके प्रति (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध प्रकाश तुमने (अधारयः) धारण किया;

(आत् इत्) उसी समय सब भुवन (ते) तेरे साथ (येमिरे) संबंधित हुए हैं । ''

इस मंत्रमें स्पष्टतासे कहा है कि, सूर्यके अंदर प्रकाशशक्ति इंद्रकी दी हुई है । और इसी कारण सब भुवनोंका नियमन इंद्र कर रहा है, अर्थात् इंद्र सूर्यके अंदर प्रकाश तत्त्व रखता है और सूर्यके द्वारा संपूर्ण भुवनोंका नियमन करता है । सूर्यके अंदर इस प्रकार " इंद्रतत्त्व " कार्य कर रहा है । इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है कि, जो विद्युत् मेघोंमें होती है, वह इंद्रका स्थूलतम रूप है । इंद्रका वास्तविक रूप सूर्यको भी तेज देनेवाला और सूर्यके अंदर व्याप्त है । तथा और देखिये-

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ॥
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे । ऋ० ८।१२।२९

" जिस समय (मारुतीः विशः) प्राणयुक्त प्रजाएं, हे इंद्र ! तेरे साथ नियमबद्ध हो गई, उसी समय सब भुवन तेरे साथ संबंधित हुए हैं । ''

इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है कि प्राणसे जीवित रहनेवालीं संपूर्ण प्रजाएं इंद्रके साथ विशेष नियमसे बंधी हैं । इससे पूर्व यही बात प्रमाणान्तरसे बताई गई है, वही इस मंत्रके प्रमाणसे अधिक प्रमाणित हो गई है । इंद्र अपनी शक्ति सूर्यमें रखता है और सूर्य किरणोंद्वारा वह इंद्रशक्ति स्थिरचर सृष्टितक पहुंचाता है । सूर्य किरणोंद्वारा यह इन्द्रशक्ति वनस्पतियोंमें और प्राणियोंमें आती है और सबमें जीवनकी कला बढाती है । इसी कारण सूर्यका प्राणियोंके साथ संबंध वेदने वर्णन किया है । देखिये-

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋ. १।११५।१

" सूर्य स्थावरजंगमका आत्मा है । '' क्यों कि वही अपने किरणों द्वारा जीवनयुक्त इंद्रशक्ति देता है और जीवनकी कला बढाता है । और देखिये—

सूर्यः कृणोतु भेषजम्। अ. ६।८३।१

" सूर्य औषध बनावे " अर्थात् सूर्य रोगोंको दूर करे। पहिले बताया ही है कि, इन्द्र (इन्+द्र) शत्रुओंका विदारण करनेवाला है। मनुष्यके जो अनेक शत्रु हैं, जिनसे कि मनुष्यको हर समय युद्ध करना पडता है, उनमें " रोग भी शत्रु ही हैं। " इन रोगरूपी शत्रुओंका नाश सूर्य ही अपने किरणों द्वारा इंद्रशक्तिको चारों ओर फैलाकर करता है। यही " सूर्यकिरणोंके द्वारा चिकित्सा है। " इसीलिये कहा है कि—

सूर्यः पवित्रं स मा पुनातु ॥

आप० श्रौ० १२।१९।६

" सूर्य पवित्रता करनेवाला है, इसलिये वह मुझे पवित्र बनावे। " अर्थात् सूर्यकिरणोंद्वारा पवित्र होकर मनुष्य शुद्ध और पवित्र बनकर नीरोग हो सकता है। मानवी नीरोगताके लिये इस प्रकार सूर्यका विशेष संबंध है। और देखिये—

सूर्यं शत-वृष्ण्यम् ॥ तेना ते तन्वे शं करम् ॥

अ. १।३।५

" सूर्य सौ प्रकारका (वृष्ण्यं) वीर्यका बल बढानेवाला है। उससे तेरे (तन्वे) शरीरके लिये (शं) सुख होगा। " तात्पर्य यह है कि, यदि मनुष्य सूर्यकिरणोंका अपने आरोग्यवर्धनके कार्यमें उपयोग करेगा, तो उसका सौ प्रकारका बल बढ सकता है, क्यों कि जीवनसाधक इंद्रशक्ति उसमें विपुल रहती है। तथा और देखिये—

इंद्र जीव, सूर्य जीव, देवा जीवा, जीव्यासमहम् ॥
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

अ. १९।७०।१

"हे इंद्र! तू जीवनशक्तिसे युक्त है। हे सूर्य! तू जीवनशक्तियुक्त है, हे देवो! आप जीवनशक्तिसे युक्त हैं। इसलिये मैं जीवित रहूंगा। मैं पूर्ण आयुतक जीवित रहूंगा। " इस मंत्रमें इन्द्र, सूर्य तथा अन्य देवोंका

मानवी जीवनके साथ संबंध स्पष्ट शब्दोंद्वारा बताया है। इंद्रसे सूर्यमें, सूर्यसे अन्य देवोंमें और वहांसे मनुष्यमें जीवन की शक्ति आती है। इस क्रमका विचार करनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि, किस प्रकार मनुष्य अपनेमें इंद्रशक्ति बढा सकता है और अपनी जीवनकी कला भी किस रीतिसे दृढ कर सकता है—

सूर्यं चामुं रिशादसम् ॥ अ. २०।१२८।१

" यह सूर्य (रिश+अदसं) क्षयका विनाशक है। " जो हिंसक, विनाशक, क्षय और नाश करनेवाला होता है, उसको " रिश " कहते हैं। इस प्रकारके (रिश) विनाशक क्षयबीजोंको सूर्य अपने किरणोंद्वारा दूर करता है, और आरोग्य स्थापन करता है। यहां पाठक " इंद्र " (इन्+द्र) शब्दका जो अर्थ शत्रुविनाशक पूर्व लेखमें बताया है, उसका विचार करें। वही भाव इस मंत्रके " रिशादस् " शब्दसे व्यक्त हो रहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि इंद्रकी शत्रुविनाशक शक्ति ही सूर्यके द्वारा हमारे रोगरूपी शत्रुओंको भगा देती है !! इसी लिये दोनों देवताओंके कई नाम एक जैसे अर्थवाले हैं। वेदकी यह शैली पाठकोंको ध्यानमें धरने योग्य है। इससे कई गूढ उपदेशोंका पता लग सकता है। अस्तु। उक्त मंत्रसे सूर्य प्रकाशके साथ प्राप्त होनेवाले जीवनपूर्ण इंद्रशक्तिका विशेष ज्ञान हो सकता है। तथा और देखिये—

सूर्यस्ते तन्वे शं तपति ॥ अ. ८।१।५

" सूर्य तेरे शरीरके लिये सुखकारक तपता है। " यह मंत्र स्पष्ट शब्दोंसे बता रहा है कि, सूर्यकिरणोंमें ऐसी कोई शक्ति है कि, जो शरीरमें सुख, आरोग्य और शांति स्थापन करती है। जो बाबू लोग अपने शरीरको अनेक कपडोंसे लपेट कर तंग कमरेके अंदर सदा बंद रखते हैं, उनको क्यों तपेदिक अथवा क्षय होता है, इसका कारण इस मंत्रके अंदर स्पष्ट हो जाता है। शरीरका आरोग्य तब रह सकता है, जब उसका संबंध सूर्यकिरणोंके साथ योग्य प्रमाणसे होता हो। सूर्यकिरणोंमें जो

व्यापक इंद्रशक्ति है, उसका यह प्रभाव है। इसी लिये निम्न मंत्रमें कहा है—

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥

अ. ५।३०।१५

" अधिष्ठाता सूर्य अपने किरणोंसे तुझे मृत्युसे बचावे।" इतनी इंद्रशक्ति सूर्यकिरणोंके अंदर है, कि जो मनुष्योंको मृत्युसे बचा सकती है। वेद अपने मंत्रोंद्वारा दीर्घ आयुके विषयमें इतने स्पष्ट उपदेश दे रहा है, तथापि तंग गलियोंके तंग मकानोंमें कमरोंके अंदर निवास करनेवाले भी अपने आपको " वैदिक धर्मी " कह रहे हैं, यह कितना आश्चर्य है ! जो लोग समझते हैं कि वैदिक धर्म शब्दोंका ही धर्म है, वे कितनी गलती कर रहे हैं, इसका स्पष्टीकरण उक्त मंत्रसेही होता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय, तो वैदिक धर्म " आचारप्रधान धर्म " है। इसलिये जो बातें वेदमें कहीं हैं, उनको आचारमें लाना चाहिये और उनसे अपना अभ्युदय सिद्ध करना चाहिये। ऐसा जो नहीं करते, वे कितने भी विद्वान् हुए तथापि निःसंदेह सच्चे वैदिक धर्मसे दूरही हैं !!! इस लिये हरएक पाठक इन मंत्रोंका विचार करे और अपने निवासस्थान ऐसे बनावे कि, जिनमें प्रतिदिन सूर्यकिरणोंद्वारा इंद्रशक्ति आ सके। किसी प्रकारकी बीमारी हो, वह जहां विपुल इंद्रशक्ति रहती है, वहांसे दूर भाग जाती है; इसीलिये वेदमंत्रोंमें सूर्यप्रकाशका महत्त्व वर्णन किया है। देखिये निम्न मंत्र—

सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै ॥

यजु. २।५

" किसी प्रकारके भी दोषसे अर्थात् विनाशक बीमारीसे सूर्य तेरा रक्षण करे।" सूर्यलोकका इससेभी अधिक महत्त्व है, जिसका वर्णन निम्न मंत्रसे हुआ है—

सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ अ. ८।१।१

"सूर्यका भाग अमृतलोक ही है।" जहां अमृत रहता है वह अमृत-लोक है । अमृत सूर्यकिरणोंमें रहता है, इसलिये अमृतलोक सूर्यलोक ही है । यह अ-मृत लोक है, इसलिये सूर्यकिरणोंसे बीमारियां दूर होती हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसका अधिक स्पष्टीकरण निम्न मंत्रसे होता है—

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥
सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शंतमेन तया
देवतयांऽगिरस्वद् ध्रुवे सीद ॥

यजु० १५।६४

"(१) सब प्रकारके प्राण, अपान, व्यान, उदान आदिकी रक्षाके लिये, (२) (प्रतिष्ठायै) बलकी स्थिरताके लिये और (३) (चरित्राय) उत्तम आचारव्यवहारके लिये, सूर्य अपनी (मह्या स्वस्त्या) महती कल्याणमयी प्रभाके साथ तथा (शंतमेन) अत्यंत सुखदायक (छर्दिषा) उत्तम रक्षाके साथ तेरा पालन करे । उस (देवतया) देवतासे (अंगि-रस्-वत्) अवयवोंके पोषक रसोंसे युक्त होकर (ध्रुवे) स्थिरतामें (सीद) रहो ।"

सूर्यकिरणोंद्वारा इंद्रशक्तिकी प्राप्ति होकर मनुष्यका कितना कल्याण होना संभव है, उसका उत्तम वर्णन इस मंत्रमें हुआ है, इसलिये हरएक पाठकको उचित है कि वह इस मंत्रका विशेष अभ्यास करे । सूर्यकिरणोंसे जो इंद्रशक्ति प्राप्त होती है, उससे पहिली और मुख्य बात यह होती है कि सब प्रकारके प्राण शरीरके अंदर सुरक्षित और बलवान् होते हैं । प्राणोंके बलसे ही सब कुछ अन्य बल रहता है, इसलिये प्राणोंकी सुरक्षितता जिससे होती है, उस सूर्यप्रकाशकी आवश्यकता मानवी जीवनके लिये कितनी है, इसका विचार हरएक मनुष्य ही कर सकता है। मुख्य पांच प्राण और गौण उपप्राण पांच मिलकर दस प्राण होते हैं । इनकी शक्तियां संपूर्ण शरीरमें तथा संपूर्ण अवयवोंमें संचारित हो रहीं हैं। इन सबकी सुरक्षितता ठीक प्रकारसे सूर्यकिरणोंकी इंद्रशक्तिसे होती है ।

दूसरी बात शरीरकी प्रतिष्ठाकी है। संपूर्ण अवयवोंकी स्थिरता, संपूर्ण शरीरका तथा सब अंगोंका बल आदि सुरक्षित रहनेके लिये सूर्यप्रकाशकी अत्यंत आवश्यकता रहती है। जो मनुष्य सदा तंग कमरेके अंधेरेमें बंद रहते हैं, उनके चेहेरेपर फीका रंग आ जाता है, खूनका लाल रंग कम हो जाता है, पांडुरोगकी छाया सब शरीरपर फैलती है। इसी लिये वेदकी आज्ञा है कि सूर्यप्रकाशसे अपने शारीरिक बलकी सुरक्षितता करो।

तीसरी बात जो सूर्यप्रकाशसे होती है वह यह है कि, मनुष्यके संपूर्ण व्यवहार चलने योग्य चपलता शरीरमें रहती है। यदि सूर्य कुछ दिन न रहेगा, तो सर्दीके कारण सब लोग सुकड जायगे, और विविध प्रकारके कष्ट होंगे। इससे स्पष्ट हो रहा है, कि हमारी हलचलके लिये सूर्यप्रकाशकी कितनी आवश्यकता है।

सूर्यप्रकाशसे इन्द्रशक्ति पृथ्वीपर आती है और उसके कारण (मही स्वस्ति) बडी स्वस्थता प्राणिमात्रको प्राप्त होती है, सब प्राणियोंको उत्तम (शं) सुख प्राप्त होता है, (छर्दिः) सुरक्षितता मिलती हैं, यह सूर्यकिरणोंका प्रभाव है। इसलिये इस अपूर्व देवताके साथ रहकर मनुष्योंको उचित है कि वे (अंगि-रस-वत्) अपने अंगरसोंसे युक्त बनें, अथवा अपने अंगोंमें जीवनरसकी अभिवृद्धि करें और अपने जीवनको सुरक्षित तथा स्थिर करें।

इतने विवरणसे पाठकोंको पता लगाही होगा, कि अपनी इन्द्रशक्तिका विकास करनेके अनुष्ठानमें सूर्यप्रकाशका कितना विशेष संबंध हे और किस रीतिसे सूर्यप्रकाशद्वारा उक्त लाभ होते हैं।

(११) इन्द्रशक्तिका अधिक परिचय।

इन्द्रशक्ति सूर्यकिरणोंद्वारा भूमंडलपर आकर जो विलक्षण कार्य करती है, उसका वर्णन वेदमंत्रोंद्वारा पूर्व भागमें किया ही है। अब प्रत्यक्ष अनुभवका विचार करना है।

सूर्यकिरणमें उष्णता रहती है, परंतु यह उष्णता अग्निकी उष्णतासे भिन्न है। सूर्यकिरणोंमें प्रकाश रहता है, परंतु यह दीपके प्रकाशसे भिन्न है। सूर्यकिरणमें गति रहती है, परंतु यह गति वायुकी गतिसे भिन्न है। सूर्यकिरणकी उष्णतासे वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं, सूर्यप्रकाशसे आंख योग्य रीतिसे अपना कार्य कर सकते हैं और सूर्यकिरणोंकी गतिसे इतनी विलक्षण गति उत्पन्न होती है कि जिसका मनुष्य उपयोग भी नहीं कर सकता। तथापि सूर्यकिरणोंमें जो " जीवन देनेवाली इन्द्रशक्ति " है, वह और ही विलक्षण है। उष्णता, प्रकाश और गति हमें अन्यत्र मिल सकती है, परंतु उसके साथ साथ जीवनशक्तिसे परिपूर्ण इंद्रशक्ति जैसी सूर्यप्रकाशसे मिल सकती है, वैसी किसी अन्य पदार्थसे नहीं मिलती। इसीलिये सूर्यप्रकाशका महत्त्व वेदके मंत्रोंमें वर्णन किया है।

घरके अंदर यदि कोई पौधा लाकर रख दिया, तो उसकी शाखाएं उस खिडकीकी ओर झुकतीं हैं, जिससे कि सूर्यप्रकाश अंदर आता है। घरके बाहिर उद्यानमें जो वृक्षादि रहते हैं, उनकी शाखाएं उस तर्फ अधिक होती हैं, कि जिस तर्फसे उनको सूर्यप्रकाश अधिकाधिक मिलता है। सूर्यप्रकाश न मिला तो वृक्षोंकी प्रसन्नता भी न्यून हो जाती है। इतना सूर्यप्रकाशका महत्त्व है और यह उस प्रकाशकी उष्णता, प्रकाश और गतिके कारण नहीं है, परंतु उसमें जो सूक्ष्म " इंद्रशक्ति " है उसके कारण ही है। यह बात ध्यानमें धरने योग्य है।

पाठक वृक्षादिकोंपर सूर्यकिरणोंका प्रभाव देखें और स्वयं अनुभव करें, कि यह बात सत्य है या नहीं। क्योंकि आगे जो अनुष्ठान बताना है, उसके साथ इसका अत्यंत निकट संबंध है। जीवनशक्तिकी वृद्धि करनेवाला भगवान् सूर्यनारायण है, वह अपने किरणोंसे यह कार्य कर रहा है, इसका अनुभव होनेके पश्चात् अपने अंदर जीवनशक्ति अथवा इंद्रशक्ति बढानेके उपाय स्वयं ही ज्ञात हो सकते हैं। इसलिये निवेदन है, कि वैदिक उपदेशकी सत्यता पाठक सबसे प्रथम देखें और अनुभव करें।

(१२) सब शक्तियोंका मूल स्रोत।

संपूर्ण शुभ शक्तियोंका मूल स्रोत मंगलमय परमात्मा ही है। वेदमें यह बात स्पष्ट रूपसे बतानेके लिये ऐसी विलक्षण योजना की है, कि संपूर्ण देवताओंके वाचक शब्द उसी एक अद्वितीय परमात्माके वाचक होते हैं !! इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है, कि सब दैवी शक्तियोंका मूल स्रोत परमात्मा है और उसकी एक शक्ति लेकर संपूर्ण अन्य देवोंका देवत्व व्यक्त हुआ है !! प्रस्तुत ' इंद्र ' के विचार करनेके समय भी यह बात ध्यानमें धरनी चाहिये, कि यह शब्द भी उसी मूल स्रोत परमात्माका ही वाचक है और साथ साथ अन्य पदार्थोंका भी वाचक है।

इंद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ॥
एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋ. १।१६४।४६

" इंद्रादि शब्द एक सद्वस्तुके ही वाचक हैं। " अर्थात् इंद्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा तथा अन्य देवतावाचक शब्दोंसे व्यक्त होनेवालीं शक्तियां उसी एक आत्मासे जगत्में फैल रही हैं। इस लिये यदि आपको अपने अंदर इंद्रशक्तिका विकास करना है, तो आपको उचित है, कि उसके मूल स्रोतकी भक्ति आपके मनमें सदा जीवित और जागृत रखिये, क्यों कि उसी मूल स्रोतसे वह शक्ति आपके अंदर आती है।

प्रत्येक शुभ गुणकी पराकाष्ठा ही परमेश्वर है। इस नियमानुसार इंद्रशक्तिकी पराकाष्ठा परमात्मामें ही है। आप परमात्माकी कल्पना उसको शुभ गुणोंकी पराकाष्ठाका केंद्र मानकर कर सकते हैं। यह परमात्मा जैसा जगत् में सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार आपके हृदयमें विद्यमान है। आप प्रतिदिन संध्या करनेके पश्चात् अपने हृदयपर हाथ रखिये और " यहां परमात्मा अपने संपूर्ण शक्तियोंसे परिपूर्ण है " इस बातका ध्यान कीजिये। जहांतक

हो सके वहांतक उसके साथ अपनी एकतानता कीजिये और सब जगत् को भूलिये । यह एक उपाय है, कि जिससे अपने अंदर इंद्रशक्ति संचारित होने लगती है । यदि मन शांत रखकर आप उक्त प्रकार उपासना कर सकेंगे तो आपको नवीन शक्ति स्फुरित होनेका अनुभव निःसंदेह आ सकता है । वेद भी कहता है–

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युद्ध्यमाना अवसे हवन्ते ॥
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इंद्रः ॥
ऋ. २।१२।९

“सब मनुष्य जिसके विना विजय प्राप्त नहीं कर सकते और युद्ध करनेके समय जिसकी प्रार्थना करते हैं; जो विश्वका प्रमाण हुआ है और जो बलवान् होनेके कारण न हिलनेवालोंको भी हिलाता है, हे लोगो ! वही इंद्र है । ”

यह भावना मनमें धारण करते हुए अपने हृदयमें इंद्रशक्तिसे संपन्न परमात्माकी भक्ति कीजिये । भक्तिसे मन इतना तैयार कीजिये, कि आपके मनको परमात्माका अपने हृदयमें निवास स्पष्ट प्रतीत होने लगे। निरंतर ध्यान करनेसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है । इसते पश्चात्—

(१३) अपने अंदर इंद्रशक्ति ।

अपने अंदर जो इंद्रशक्ति है उसका भी स्मरण कीजिये। प्रिय पाठको ! आप भी “ इंद्र ” हैं । इन्द्र शब्द जैसा परमात्माका वाचक है, उसी प्रकार “ जीवात्मा ” का भी वाचक है, इसलिये आप स्वयं इंद्र हैं । आपके अंदर बीजरूप जो इंद्रशक्ति है, उसीका विस्तार करना है । यदि आपके अंदर इंद्रशक्तिका बीज न होगा तो, बाहिरसे इंद्रशक्ति आकर वह आपके अंदर कार्य नहीं कर सकती। परमात्माके अमृतपुत्र आप हैं । जिस प्रकार पिताकी संपूर्ण शक्ति अंशरूपसे पुत्रमें आती है, उसी प्रकार परम पिता परमात्माकी व्यापक प्रचंड शक्तिका अल्प अंश आपके अंदर है, उस

बिंदुरूप अंशमें परमात्माकी संपूर्ण शक्तियां सूक्ष्म रूपमें विराजमान हैं। इन सूक्ष्म और अल्प शक्तियोंका ही विकास करना है। विकासका प्रारंभ होनेके पूर्व आपको इस बातका पता होना चाहिये कि, " अपने अंदर परमपिताके वीर्यका अल्पसा अंश है " जिसका विकास सुनियमोंके द्वारा निश्चयसे होता है।

उस प्रकार विकासका निश्चय होनेकी संभावना आपके मनके अंदर स्थिर और दृढ होनेके पश्चात् पुरुषार्थ–प्रयत्नसे ही यह साध्य होगा, यह विश्वास रखिये। इस विषयमें किसी प्रकारकी संशयवृत्ति न रखिये। क्यों कि संशय ही विनाशका हेतु है। इसलिये आप पुरुषार्थसे सिद्धि मिल सकती है, इस बातपर विश्वास रखिये। इससे आपका मार्ग बहुत सुगम हो जायगा।

जीवात्माका नाम "क्रतु" है। यह शब्द पुरुषार्थका सूचक स्पष्ट है। वेदही आपको क्रतु कहता है, इसलिये अपने कर्तृत्वमें शंका करना आपको उचित नहीं है। ऐसा दृढ निश्चय अपने मनमें स्थिर कीजिये कि, " सब विघ्नोंको दूर करके मैं अवश्य इष्ट सिद्धि प्राप्त करूंगा। " उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम अपने अंदर बढानेसे मनुष्य हरएक प्रकारकी उन्नति प्राप्त कर सकता है, इस वैदिक सिद्धांतको अपने मनके अंदर स्थिर करके अपनी इंद्रशक्तिका विकास करनेका दृढ निश्चय कीजिये।

वैदिक धर्मका अमली जीवन व्यतीत करनेसे ही इंद्रशक्ति विकसित हो सकती है। किसी भी अन्य धर्मपुस्तकमें इंद्रशक्तिका उल्लेख नहीं है और वेदमें इस इंद्रशक्तिका वर्णन करनेवाले सहस्रों मंत्र विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट है, कि इंद्रशक्तिका विकास करनेमें वेदसे कितनी सहायता मिल सकती है। यद्यपि वैदिक जीवन व्यतीत करनेसे इंद्रशक्तिका विकास होता है, यह सत्य है; तथापि " वैदिक जीवन " का स्वरूप क्या है, इस बात का बहुतही थोडे मनुष्योंको पता है। इसलिये यह बात सारांशरूपसे यहाँ बतानेका यत्न करना है।

(१४) आपका ध्येय "अभ्युदय" है।

सूर्यका उदय होता है, चंद्र और नक्षत्र उदयको प्राप्त करते हैं; बीजसे वृक्षोंका उदय होता है, इस प्रकार सर्वत्र जगत् में अभ्युदय ही अभ्युदय है। हरएक सजीव पदार्थमें यह शक्तिका विकास देखिये और अनुभव कीजिये, कि यह " अभ्युदयका नियम " जगत्में कैसा कार्य कर रहा है ! प्रकृतिके सूक्ष्म परमाणुओंसे सूर्यचंद्रादिकोंका उदय हो रहा है; बीजसे वृक्ष बढ रहे हैं; वीर्यबिंदुसे प्राणियोंके शरीर विकासको प्राप्त हो रहे हैं; इस प्रकार सर्वत्र शक्तियोंका विकास हो रहा है। यदि संपूर्ण सृष्टिके अंदर शक्तिका विकास कार्य कर रहा है, तो अशक्त स्थितिमें रहनेसे आपका कैसा कार्य चल सकता है ? आपको भी उचित है, कि आप अपनी शक्तिका विकास करें और अन्योंकी अपेक्षा अधिक विकसित होकर आदर्शरूप बनें। वेद भी कह रहा है कि—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। अ. ८।१।६

" हे मनुष्य ! उन्नत होना तेरा कर्तव्य है, अवनत होना नहीं है।" ध्यान रखो कि अभ्युदय, उन्नति, प्रगति ये ही शब्द आपके मार्गदर्शक हैं। आप अन्य हीन बातोंको अपने मनमें न रखिये। आपके अंदर आत्मिक बल, बुद्धिकी शक्ति, मनका वीर्य, इंद्रियोंकी शक्तियां और शरीरकी ओजस्विता कितनी बढ सकती है, उसकी मर्यादा अभीतक किसीने निश्चित नहीं की है। आपके शरीरमें ऐसे शक्तिके केंद्र हैं, कि जिनका पता भी अभीतक किसीको लगा नहीं है। इससे स्पष्ट होता है, कि अपनी शक्तिके विकासका क्षेत्र आपके सामने अमर्यादित है। कोई हद नहीं है, और कोई मर्यादा नहीं है। इस लिये आपको अपनी हिंमत बढानी चाहिये और ऋषिमुनियोंके निश्चित किये हुए साधनमार्गसे आगे बढना चाहिये।

आप अपने आपको और अपने राष्ट्रको अन्योंकी अपेक्षा, पीछे न रखनेका, अर्थात् आगे बढानेका यत्न कीजिये। हरएक कार्यक्षेत्रमें यह नियम

ध्यानमें धारण कीजिये, कि आपको आगे बढना है और विघ्नोंके साथ युद्ध करके विघ्नोंको दूर भगाकर अपना धर्ममार्ग निष्कंटक करना है। जो नियम अन्यान्य कार्यक्षेत्रोंमें है, वही अपनी इंद्रशक्तिका विकास करनेमें भी है। इसलिये इस बातको कभी न भूलिये।

बंधनोंसे पूर्ण मुक्ति ही आपका ध्येय है। इसको आप निर्वाण कहिये, मुक्ति समझिये, या कोई अन्य नाम दीजिये। "पूर्ण स्वतंत्रता" जिसको वेद "स्व-राज्य" कहता है, वही आपका ध्येय है। आजकल जो "स्व-राज्य" शब्द राष्ट्रीय स्वतंत्रताका वाचक प्रसिद्ध है, वह इससे भिन्न है। वेदका "स्वराज्य" शब्द अध्यात्मदृष्टिमें आपके पूर्ण शक्तिविकासका ही नाम है। आधिभौतिक दृष्टिमें उसका अर्थ राष्ट्रीय स्वराज्य है, जिसका वैदिक तात्पर्य इतनाही है कि राष्ट्रकी संपूर्ण शक्तियोंका विकास। जिस प्रकार राष्ट्रकी संपूर्ण शक्तियोंका पूर्ण विकासका भाव राष्ट्रीय स्वराज्यमें है उसी प्रकार अपनी संपूर्ण शक्तियोंके विकासका भाव आध्यात्मिक स्वराज्यमें है। अस्तु। अपनी अनेक शक्तियोंमें जो मुख्य इंद्रशक्ति है, उसका विकास करनेका ध्येय इस समय आपको अपने सन्मुख धारण करना चाहिये। इतना निर्देश इस समय पर्याप्त है।

(१८) मृत्यु और अमरत्व।

हरएकके पीछे मृत्युका डर लगा हुआ है। परंतु मृत्यु, दुःख, कष्ट आदि जो हैं, वे हमारे उत्तम शिक्षक हैं। इस दृष्टिसे देखनेसे मृत्युका महत्त्व ध्यानमें आ सकता है। गलतियों और अशुद्धियोंसे बचानेकी सूचना दुःखों और कष्टोंसे मिलती है। मृत्यु इस नश्वर जगत् की साक्षी दे रहा है और नश्वर जगत्में शाश्वत आत्मा है, यह ज्ञान मृत्युको देखनेसेही होता है। मृत्यु न होगा, तो जन्मभी नहीं होगा। पुत्रजन्मका उत्सव देखना है, तो पूर्वजोंकी मृत्यु अवश्य सहन करनी चाहिए। इस प्रकार मृत्यु हमारी उन्नतिमें विलक्षण सहायता करता है। वृद्ध होनेके कारण कार्य करनेमें

असमर्थ हुआ शरीर दूर करके नवीन कार्यक्षम शरीर मिलनेके लिये मृत्यु-की अत्यंत सहाय्यता है। जो मृत्यु पुराने शरीरको दूर करता है और नवीन शरीरके साथ योग होनेमें सहायता देता है, हमारी उन्नतिमें निःसंदेह अद्भुत सहायता करता है। इस दृष्टिसे सहायकारी मृत्युसे डरना उचित नहीं है। परंतु मृत्युके अंदर भी परमात्माका कृपाहस्त देखकर उसको भावी उन्नतिका सूचक समझना चाहिये। इसका यह भाव नहीं, कि हरएक मनुष्य अतिशीघ्र मरनेका यत्न करे; नहीं, हरएक मनुष्यको दीर्घ जीवनके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। परंतु किसी समय कारणवश मृत्यु प्राप्त होने लगा, तो उससे डरना नहीं चाहिये।

मनुष्यकी शक्ति विकसित करनेके लिये समय समयपर दुःखों, कष्टों और मृत्युको भी आनंदसे स्वीकारना पडता है। सत्पक्षके ऊपर असत्पक्षका हमला होनेके समय सत्पक्षके साथ मिलकर असत्पक्षसे युद्ध करना होता है। यह आवश्यक कर्मही है। यह आवश्यक कर्तव्य न किया, तो उन्नति अशक्य है। इसी प्रकार समाज, जाति और राष्ट्रके संरक्षणका युद्ध आवश्यक होनेपर उसमें अपना भाग अवश्य करना पडता है। इस प्रकारके धर्मयुद्ध करनेसे उन्नति और न करनसे अवनति निश्चित होती है। इसलिये आत्मशक्तिका विकास करनेवालेको उचित है, कि इस प्रकारके धर्मयुद्धके लिये वह सदा तैयार रहे। युद्धके लिये तैयार होनेका अर्थ यही है, कि मृत्युके लियेही सिद्ध होना। इस प्रकारके कार्योंमें मृत्युभी उन्नतिका साधक होता है।

मृत्युसे उन्नति किस प्रकार होती है? यह प्रश्न यहां हो सकता है। इसका उत्तर यह है, कि "त्याग" भावसे उन्नति होती है, यह सब शास्त्रकार मानते ही हैं। पूर्वोक्त प्रकारके धर्मयुद्धमें तथा अन्य प्रकारके सत्कर्मोंमें जो मृत्यु होता हैं, उसको स्वीकार करनेके समय "सर्वस्वत्याग" करनेकी आवश्यकता है। यदि थोडेसे त्यागभावसे उन्नति होती है, तो सर्वस्वत्याग करनेसे कितनी उन्नति संभवनीय है इसका विचार पाठक करें।

त्यागभावसे जो संस्कार आत्माके ऊपर होते हैं, उन संस्कारोंसे आत्मिक बल बढता है, इस रीतिसे और इस क्रमसे जातिके हितके लिये आत्मसमर्पण करनेके समय होनेवाले मृत्युसे आत्मिक बलका विकास होता है, जो इंद्रशक्तिके विकासका प्रधान हेतु है।

यहां कोई यह न समझे, कि इस प्रकारके सार्वजनिक कर्ममें देहपात होनेसे अपना सर्वस्व नष्ट हो जाता है। प्रत्युत इस प्रकारकी मृत्युसे आत्मिक बल विलक्षण बढ जाता है, जो आगामी जन्ममें विना मेहनत प्राप्त होता है। इस प्रकार क्रमसे उन्नति होती है, इसलिये हरएकको उचित है, कि वह मृत्युमें परमेश्वरका शुभ मंगलमय हाथ देखें और मृत्युको भी अपना सहायक माने।

जगत्‌में मृत्यु है, इसलिये अमरत्वकी प्राप्ति करनेकी अभिलाषा मनुष्यमें उत्पन्न होती है। व्यक्तिके पीछे मृत्यु लगता है, परंतु समष्टिको मृत्युका कष्ट नहीं होता। व्यक्ति मरणधर्मसे युक्त है, परंतु समष्टि अमर है। एक एक व्यक्ति मरती है, परंतु वह मनुष्य जिस जातिका एक अवयव होता है, वह जाति अमर होती है, इसलिये मृत्युसे तैर जाने और अमरत्व प्राप्त करनेका उपाय यह है कि, मनुष्य वैयक्तिक अहंकारको छोड दे और सामुदायिक जीवन अधिकाधिक व्यतीत करे। जितना सामुदायिक जीवनका क्षेत्र अधिक व्यापक होगा, उतना अमरपन भी अधिक होगा, यह बात यहां स्पष्ट हो गई है। अकेले रहनेमें मृत्यु और समुदायके रूपमें रहनेसे अमरपन इस प्रकार होता है। यह मृत्यु और अमरपनका संबंध देखकर उसको अपने जीवनमें ढालनेका यत्न हरएकको करना चाहिये।

परमात्मा, जीवात्मा, मृत्यु और अमरपनका इस प्रकारका संबंध विचार की आंखसे देखिये और अपनी शक्ति विकसित करनेके लिये परमात्माकी अपने हृदयमें भक्ति कीजिये; जीवात्माकी शक्तियोंका निश्चित ज्ञान प्राप्त कीजिये; मृत्युकी सहाय्यता देखिये और सामुदायिक जीवनसे अमरत्वकी प्राप्ति किस प्रकार होती है, इस बातका अनुभव कीजिये। इनके विषयमें

आपका निश्चय हुआ, तो समझ लीजिये कि इंद्रशक्तिका विकास करनेकी आपकी योग्य तैयारी हो गई है।

(१६) इंद्र और वृत्रका युद्ध ।

वेदमें "इंद्र और वृत्रका सनातन युद्ध" वर्णन किया है। यह युद्ध सनातन है। इसी युद्धसे अंतमें इंद्रका विजय होता है और इंद्रकी शक्ति विकासित होनी है। वृत्रको इंद्र क्यों मारता है और इन दोनोंका सनातन युद्ध क्यों होता है, यह बात समझनेके लिये वृत्रकी कल्पना पहिले होनी चाहिये। सैकडों वेदमंत्र इस युद्धका मनोहर वर्णन कर रहे हैं, वे सब मंत्र देखनेके लिये यहां स्थान नहीं है। तथापि इस लेखका कार्य केवल वृत्रका स्वरूप जाननेसे ही हो सकता है। "वृत्र" का स्वरूप इसी शब्दसे ज्ञात हो जाता है। जो चारों ओरसे घेरता है उसको वृत्र कहते हैं। घेरनेवालेका नाम वृत्र है। घेरनेका अर्थ प्रतिबंध करनेसे है। इंद्र अपना प्रभाव बढाना चाहता है, उसको चारों ओरसे घेरकर जो प्रतिबंध करते हैं, उनका नाम वृत्रासुर है। इसी लिये प्रभाव बढानेवाले इंद्रको उचित है, कि प्रतिबंध करनेवालेके साथ युद्ध करे और उसका पराभव करके अपना प्रभाव बढावे। इंद्र और वृत्रके युद्धका यही तात्पर्य है। अब इसका स्वरूप बाह्य सृष्टिमें तथा आंतरिक सृष्टिमें देखना चाहिये।

पाठको ! यदि आप अपने अंदर हृदयमें और बाह्य जगत्में अपनी विचारकी आंख खोलकर देखेंगे, तो आपको पता लग जायगा, कि आपको प्रतिबंध करनेवाली शक्तियां अनेक हैं। आपकी प्रगतिमें जो प्रतिबंध डालते हैं, वेही आपके वृत्र हैं और उनके बीचमें आप ही इंद्र हैं। आपको उनके साथ सदा सर्वदा युद्ध करना अत्यावश्यक है। यदि आप इस युद्धसे पीछे हटेंगे, तो आपका पूर्ण पराजय हो जायगा और आपकी इंद्रशक्ति नष्ट हो जायगी। परंतु यदि आप बाह्य और आंतरिक प्रतिबंधोंको तोडकर अपनी स्वतंत्रता सिद्ध करेंगे, तो आपके प्रभावका दिव्य तेज चारों ओर

फैल जायगा। यह इंद्र और वृत्रोंके सनातन युद्धका सारांशसे स्वरूप है। अब इसीका थोडासा विस्तार करना आवश्यक है। वेद कहता है कि—

अप्रतीतो जयति सं धनानि।
प्रतिजन्यान्युत या सजन्या॥ ऋ. ४।५०।९

" जो (अ–प्रति–इतः) जो पीछे नहीं हटता है, वही उन धनोंको (सं-जयति) उत्तम प्रकारसे प्राप्त करता है, जो धन (प्रतिजन्यानि) वैयक्तिक अधिकारके तथा (स–जन्यानि) समाजके अधिकारके होते हैं। "

तात्पर्य यह है कि, वैयक्तिक और सामुदायिक विजय तब प्राप्त होगा, कि जब युद्ध करनेवाला वीर युद्धक्षेत्रसे पीछे न हटेगा। हरएक मनुष्य प्रतिक्षण युद्धमें है, इसी युद्धको "जीवन–युद्ध" कहते हैं। इस जीवनयुद्धमें जो प्रतिपक्षी है, वह आपको प्रतिबंध करनेके कारण आप इंद्र है और आपकी अपेक्षासे, वह वृत्र है। इसलिये आपको उचित है कि, आप उसके साथ युद्ध करके उसका पराजय करें और अपना जय संपादन करें।

यदि आप अपने चारों ओर देखेंगे, तो आपको सामाजिक राष्ट्रीय कार्यक्षेत्रमें बीसियों शक्तियां आपकी उन्नतिमें बाधा डाल रहीं हैं, इसका अनुभव हो जायगा। तथा अपने शरीरके अंदरभी रोगादि तथा दुष्ट भावनादि अनेक असुर खडे हैं, जो आपको प्रतिबंध कर रहें हैं। अपने आध्यात्मिक क्षेत्रमें रोग और दुष्ट भाव, आधिभौतिक युद्धक्षेत्रमें सामाजिक और राजकीय प्रतिबंध करनेवाले, तथा आधिदैविक युद्धक्षेत्रमें भूचाल अवर्षणादि विघ्न आपको घेर रहे हैं और आपको घेरकर आपको उठने नहीं देते हैं। इन प्रतिबंधक शक्तियोंका पराभव करना और अपने अभ्युदयकी सिद्धि करना आपका यहां आवश्यक कर्तव्य है।

यदि आप इस पद्धतिसे विचार करेंगे, तो आपको पता लग जायगा, कि इंद्र और वृत्रका युद्ध मानवी जीवनमें भी सनातन युद्ध है। मनुष्यके हृदयस्थानमें जो इंद्रका अंशावतार हुआ है, उसको उचित है, कि वह अपने अभ्युदयके मार्गमें प्रतिबंध करनेवाले इन वृत्रोंको पराजित करे और

अपनी उन्नति प्राप्त करे। वेदमें जो इंद्र-वृत्रके युद्धका वर्णन है वह इस प्रकार सनातन युद्ध है, और जो हरएक मानवको करना है। जिस समय पाठकवृन्द इस सनातन युद्धका अनुभव करेंगे, उसी समय वेदके मंत्रोंका सनातन उपदेश उनके ध्यानमें आसकता है, और तब पता लग सकता है, कि वेदका आशय कितना गंभीर है, और उसका संबंध मनुष्यके प्रतिदिनके व्यवहारके साथ कैसा है। अस्तु। इस प्रकार प्रतिबंध करनेवाले असुरोंके साथ होनेवाले सनातन युद्धका स्वरूप है; अब इसीका अधिक विस्तारसे वर्णन करते हैं—

(१) प्रायः असुर अभावरूप ही होते हैं, जैसा "अ-सुर" यह शब्द ही "सुरोंका अभाव" बता रहा है। उसी प्रकार प्रकाशका अभाव, ज्ञानका अभाव, धैर्यका अभाव इ० हैं। यद्यपि अभाव शब्दसे किसी वस्तुविशेषका बोध नहीं होता, तथापि ये अभावरूपी असुर स्वयं वस्तुरूप न होते हुए भी बडे प्रतिबंध खडे कर देते हैं। ज्ञानका अभाव ही अज्ञान है। अज्ञान करके कोई वस्तु या पदार्थ नही हैं, तथापि यह असुर हरएक मनुष्यके मन और बुद्धिके कार्यक्षेत्रमें आकर बडे प्रतिबंध खडे करते हैं। गाढ अंधकार प्रकाशका अभाव ही है, तथापि कई प्रकारकी बाधाएं इस अंधकारसे उत्पन्न होती हैं। तात्पर्य वृत्र वास्तवमें तमःस्वरूपी अभावरूपी होनेपर भी हर स्थानमें बाधा उत्पन्न करता है।

(२) आत्मिक कार्यक्षेत्रमें आत्मिक बलका अभाव होनेके कारण कई मनुष्य शक्तियां होते हुए भी सबसे पीछे पडे रहते हैं, क्यों कि उनके अंदर इतना होसला नहीं होता कि आगे बढें। केवल इस बलके अभावके कारण उनकी सब प्रकारकी उन्नति बंद हो जाती है।

(३) वृत्रादि असुरोंका स्वरूप वेदमें अंधकारमय वर्णन किया है। वेद कहता है, कि जहां वृत्र जाता है, वहां अंधेरा होता है, इसका तात्पर्य ऊपर वर्णन किया ही है। हरएक क्षेत्रमें जहां अभावरूप असुर भासमान होता है, वहां अंधेरा वढता जाता है। इंद्र प्रकाशका प्रतिनिधि है और

उसके विरोधी सब असुर अंधेरेके प्रतिनिधि हैं। इस जगत् में प्रकाश और अंधकारेका युद्ध हमेशासे चल रहा है।

(४) मनुष्यके मनोभूमिमें उत्साह, फूर्ति, उद्यमशीलता, धैर्य, गंभीरता, धार्मिक भाव आदि शुभ गुण प्रकाशसे संबंध रखते हैं, ये इंद्रके सहचारी " देवगुण " हैं। निरुत्साह, आलस्य, सुस्ती, भय, हीन वृत्ति आदि संपूर्ण अशुभ दुर्गुण अंधेरेके साथ संबंध रखते हैं और ये सब वृत्रके सहचारी " असुर गुण " हैं। इनका विस्तार बहुत है, जिसको पाठक स्वयं जान सकते हैं।

यदि पाठक इंद्रसूक्तके मंत्र पढेंगे, तो वहां इंद्रका प्रभाव और उत्कर्ष दिखाई देगा। यदि पाठकोंके मनमें इंद्रके मंत्रोंका भाव स्थिर हो जाय, तो उस मनमें भी प्रभावयुक्त प्रतिभा स्थिर रूपसे विराजमान हो जायगी और वहांसे चिंता और हीनता दूर हो जायगी। इंद्रसूक्तोंका भाव ठीक प्रकार ध्यानमें आनेके लिये हरएक स्थानके इंद्रशक्तिकी जैसी कल्पना होनी चाहिये, उसी प्रकार विरोधी असुरवृत्तिकी भी कल्पना होनेके लिये यहां नीचे एक कोष्टक देता हूं जिससे उक्त भाव अधिक स्पष्ट हो जायगा—

युद्धक्षेत्र	इंद्र और उसकी विभूति	वृत्र और उसकी दुर्भूति
बुद्धि	ज्ञान	अज्ञान
मन	उत्साह, शिव संकल्प,	चिंता, हीन विचार
इंद्रिय	इंद्रियकी शुभ प्रवृत्ति,	इंद्रियकी हीन वृत्ति
शरीर	फूर्तियुक्त नीरोग शरीर, आरोग्य	आलस्युक्त रोग पीडित शरीर
कुटुंब	एक विचारसे रहनेवाला परिवार	भिन्न विचारसे आपसमें झगडनेवाला परिवार
ग्राम	आरोग्यपूर्ण नगर	रोगी गांव
राष्ट्र	प्रगतिशील विजयी राष्ट्र	अवनत जाति

समाज	अभ्युदय प्राप्त करनेवाला समाज	झगडनेवाला समाज
अन्न पान	जो हितकारक पथ्य और बल वर्धक भोजन और पेय है।	जो बलहारक रोगवर्धक खाना होता हैं।
बाह्य विश्व	सूर्य, विद्युत, दिन, प्रकाश	मेघ, रात्री, अंधेरा

इस छोटेसे कोष्टकसे पाठकोंको इंद्रशक्ति और असुर शक्तिकी व्यापकताकी और उनके सनातन युद्धकी कल्पना हो सकती है और यह कल्पना होनेके पश्चात् वे अपने आपको इस युद्धक्षेत्रमें देख सकते हैं। जिस समय अपने आपको इस युद्धक्षेत्रमें पाठक देखेंगे, तब उनको इंद्रशक्ति बढानेके उपाय ज्ञात हो सकते हैं। अनुष्ठानका प्रारंभ होनेके पूर्व पाठकोंकी इतनी तैयारी अवश्य होनी चाहिये।

इस प्रकार इंद्रके शत्रुओंका सामान्य स्वरूप है। हरएक स्थानमें तथा अवस्थामें इनका वास्तव्य है और योग्य दक्षता न रखनेपर इनका हमला हो जाता है। यदि अपनी यथायोग्य युद्ध करनेकी तैयारी न रही, तो हृदयकी इंद्रशक्ति दब जाती है। इस लिये इंद्रशक्तिका विकास करनेकी इच्छा करनेवालोंको सब प्रकारका पथ्य रखनेकी आवश्यकता होती है। यह पथ्य केवल खानपानका ही नहीं है, प्रत्युत सब प्रकारके अन्य व्यवहारोंमें भी रखना चाहिए।

ऋषिप्रणीत आचारशास्त्रोंमें इस पथ्य व्यवहारका विचार बहुत ही है, उसीका अतिसंक्षेपसे यहां सारांश लेता हूं—

(१७) इन्द्रशक्तिका घातक खानपान।

शक्तिके पोषण करनेका विचार जहां चलता है, वहां खानपानका विचार सबसे प्रथम करना चाहिये। विशेषतः आजकाल इस बातकी अत्यंत आवश्यकता है, क्यों कि इस समय " आसुरी पदार्थ" आर्योंके खानपानमें

इतने घुस गये हैं कि, उनको दूर करना कठिन हो गया है। जिन ऋषि-मुनियोंने आचारव्यवस्थापर इतना जोर दिया था और खानपानव्यवस्था यहांतक पूर्ण बनाई थी कि, वे "इच्छा-मरण" की शक्ति बढा सके थे, उसी देशमें आज वह ऋषिव्यवस्था टूट गई और पूर्णतासे आसुरी खानपान चल पडा है !!! किया क्या जाय ? परंतु ऐसा हुआ है, इसीलिये वैदिक धर्मियोंको अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिये और इंद्रशक्तिका विकास करनेकी ऋषिमुनियोंकी रीति पुनः प्रचारमें लानेका यत्न करना चाहिये।

आजकलके खानपानमें चा, काफी, सोडावाटर, तमाखु, भंग, मद्य, तेलके तले चटपटे पदार्थ, विविध प्रकारके उत्तेजक मसाले, डब्बोंमें भरकर बेचे जानेवाले खानेके पदार्थ, अनेक प्रकारके खट्टे और तीखे अचार आदि अनंत पदार्थ निःसंदेह आसुरी पदार्थ हैं, जो पेटमें जाकर खूनको बिगाड कर हृदयकी इंद्रशक्तिको हतबल कर रहे हैं, परंतु "फैशन" के शौकी मौज करते हैं और इस मौजके कारण अपना घात कैसा हो रहा है, इसकी कोई भी पर्वाह नहीं करता !!!

अखबारी दुनियांके अंदर "कामोत्तेजक औषध" की गोलियां और रस इतने बढ रहे हैं कि चतुर लोगोंको पैसा कमानेका दूसरा "सभ्य धंदा" ही मिलना अशक्य हुआ है !! इस विषयमें अधिक लिखनेकी यहां आवश्यकता नहीं है। और यहां न इतना विस्तृत स्थान है, परंतु अपथ्य खानपानकी व्याप्ति बतानेके लिये यहां इसका नामनिर्देश करना आवश्यक हुआ, इसीलिये लिखा है।

मनुष्यका शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि आदि सब हमारे खानपानके साथ संबंध रखते हैं। आजकल मज्जातंतुकी निर्बलताका मूल कारण विपरीत आसुरी खानपान ही है। मस्तिष्ककी कमजोरीका मूल कारण विपरीत आसुरी खानपान ही है। मास्तिष्ककी कमजोरीका आदि कारण अपथ्य भोजनमें है। तथा प्रतिदिन जो विलक्षण बीमारीयां बढ रहीं हैं, उनका हेतु वास्तविक रीतिसे अयोग्य खानपान तथा अयोग्य व्यवहारही है।

परंतु " फैशन " की गुलामीके कारण मनुष्य इसका विचार नहीं करते और विपत्तिमें प्रतिदिन डूब रहे हैं। इसलिये वैदिक धर्मियोंको उचित है कि वे इस बातका विचार करें और स्वयं अनुष्ठान करके योग्य आचार, विचार और व्यवहारका प्रचार करें।

अपना शरीर देवताओंका मंदिर है, इस देवगृहमें कौनसा पदार्थ लाना और कौनसा न लाना, इसका विचार हरएक मनुष्यको करना चाहिये। परंतु आश्चर्यकी बात यह है, कि इसी बातका विचार सबसे कम किया जाता है, जिसका परिणाम आजकलकी नाना प्रकारकी आधियां और व्याधियां हैं !!!

देखिये, उत्तम शुद्ध जल पीना शरीरस्वास्थ्यके लिये लाभदायक है, परंतु चा, काफी, सोडावाटर ये उष्ण पेय तथा अन्य प्रकारके शीत पेय बाजारोंमें बेचते हैं और कोई इसको रोकनेवाला नहीं है !! कानूनमें " विष-प्रयोग " से किसीके जीवितका थोडे कालमें नाश किया तो अदालतोंमें इस गुन्हेगारको दंड होता है; परंतु उक्त अपेय पानोंके दुकानदार अल्प प्रमाणमें " विष–प्रयोग " कर रहे हैं, और उसको किसी कानूनसे रोका नहीं जाता, परंतु इन विषोंसे शीघ्र मृत्यु नहीं होता है !!! क्या यह आश्चर्य नहीं है ? यदि ऐसी बात ऋषिकालमें कोई करता, तो निःसंदेह वह वधदंडका भागी हो जाता !

उक्त पेयोंके अंदर विशेष प्रकारके विष हैं, जो शरीरमें घुस कर हर प्रकारसे जीवनशक्तिको कम करते हैं। यही कारण है कि जिससे नवीन बीमारियां उत्पन्न हो रहीं हैं, जिनके नाम प्राचीन ग्रंथोंमें देखे भी नहीं जाते !

तमाखू, बीडी, सिगरेट आदिके विज्ञापन बडे बडे राष्ट्रीय वृत्तपत्रोंमें भी फडकते हैं, परंतु ये पत्रकार सोचते नहीं कि जिनके अंदर राजकीय भावना की जागृति करनेके लिये ये अखबार चलाये जाते हैं, उनकेही स्वास्थ्यकी जड ये विज्ञापन काट देते हैं !!! धार्मिक और सामाजिक अखबारोंके विज्ञापनोंमें " ब्रह्मचर्यवटी, वीर्यवर्धक गोली और कामवर्धक गुटिकाएं "

कम नहीं हैं ! जहां धर्मप्रचारके कार्यसाधक अखबारवाले अपने ग्राहकोंके स्वास्थ्यकी आहुति लेकर अपना स्वार्थसाधन करनेकी तैयारी कर रहे हैं, वहां अन्योंकी अवस्था क्या विचार करनी है ?

दवाईयोंके विज्ञापन तथा शरबतोंके इश्तिहार कोई कम घात नहीं कर रहे हैं। चरक और सुश्रुत पढनेसे पता लग सकता है कि औषधिप्रयोग किस प्रकार और कितनी सावधानतासे करना चाहिये। परंतु आजकल ऋषिमुनियोंके नाम भी अखबारोंमें रगडे जा रहे हैं। इसका हेतु "द्रव्य कमाना" ही केवल है।

यह "द्रव्यकी प्यास" जगत् में कितने अनर्थ करा रही है, इसका कोई ठिकाना नहीं ! इस लेखमें केवल सूचना मात्र लिखा है। पाठक सोचें और विचारें कि, शत्रुओंकी संख्या कितनी है। इन आसुरोंकी विरोधी शक्तिका प्रतिकार करके पाठकोंको अपनी "इंद्रशक्ति" विकसित करनी है।

उक्त विचारसे पाठक यह न समझें कि बाजारोंकी मिठाईकी दुकानें और दूधवालोंके स्थान तथा छावडीवालोंके व्यवहार सब उत्तम हैं। यद्यपि ये साक्षात् जहर नहीं बेचते, तथापि ये इतने अस्वच्छ और अपवित्र रहते हैं और इनके दुकानोंमें इतनी गंदगी भरी रहती है, कि कोई भी अपने आरोग्यका हितचिंतक इनसे कोई पदार्थ लेकर खा नहीं सकता। इसलिये इनको स्वच्छता और पवित्रताकी दीक्षा देनी अत्यावश्यक है। इस खान-पानके विषयमें इस दृष्टिसे पाठक विचार करें और सोचें कि अपनी शक्ति क्षीण करनेके लिये किस मिषसे ये शत्रु बैठे हैं !!!

इंद्रशक्तिके घातक खानपानके विचारके अंतमें मांसाहारका विचार करना चाहिये। मांसभोजन करनेवाले जो लोग होते हैं उनको फी सदी ३६ बीमारियां अधिक होती हैं और फलभोजियोंको उतनी कम होती हैं। इससेभी अधिक इस विषयपर लिखा जा सकता है, परंतु इतनाही यहां पर्याप्त है। इंद्रशक्तिका विकास करनेके अनुष्ठानके लिये नीरोग जीवनकी

अत्यंत आवश्यकता है, इसलिये जिस खानपानसे आधि और व्याधि बढ जाती है, वह खानपान सर्वथा दूर करना चाहिये। अब इंद्रकी साधक शक्तिका विचार करेंगे—

(१८) इंद्र और मरुत्!

इंद्र और मरुतोंका संबंध अत्यंत निकट है, इसकी साक्षी "इंद्रा-मरुतौ" यह वैदिक देवता दे रही है। इंद्रके सूक्तोंमें मरुतोंका और मरुतोंके सूक्तोंमें इंद्रका संबंध आता है। यह संबंध विचार करने योग्य है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वा पृतना जयासि।
ऋ. ८।९६।७

"हे इंद्र! तेरी मित्रता मरुतोंके साथ रहे, इसीसे तेरा विजय इन सब युद्धों में होगा" तथा—

मरुत्वाँ इंद्र वृषभो रणाय॥ ऋ. ३।४७।१

"इंद्र (वृष-भः) बलवान् तथा (रणाय) युद्धके लिये समर्थ है।" तथा—

मरुत्वान्नो भवत्विंद्र ऊती। ऋ. १।१००।१

"मरुतोंसे युक्त इंद्र हमारा रक्षण करनेवाला होवे।" और देखिये—

मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा। ऋ. ७।५६।२३

"मरुतोंके साथ होनेसे शूर और युद्धोंमें विजयी होता है।" इस प्रकार अनेक मंत्रोंमें वर्णन है। इसका तात्पर्य यहां देखना चाहिये। "मरुत्" शब्दका अर्थ अध्यात्ममें "प्राण" और अधिदैवतमें "वायु" है, यह कई वार बताया ही है। अधिदैवतके वायुका संबंध हमारे प्राणसे निश्चित है। अधिदैवतका वायु विश्वव्यापक प्राण है और अध्यात्मका प्राण शरीरके अंदरका प्राण है। इस प्रकार इनका अभेद संबंध है। तात्पर्य अपने प्रचलित विषयका विचार करनेके संबंधमें—वैयक्तिक विकासका विचार कर्तव्य

है, इस लिये यहां " मरुत् " शब्दका अर्थ " प्राण " ही है। प्राण अनेक होनेसे ही मरुत् शब्दका बहुवचन उक्त मंत्रोंमें आया है, वह सार्थ है। तात्पर्य यह है कि " प्राणोंके साथ इंद्रका बल बढता है " यह उक्त मंत्रोंका आशय है। इस प्रकार प्राणायामका संबंध इंद्रशक्तिके विकासके साथ है। प्राणायामसे प्राणोंका बल बढ जाता है और प्राणोंके बल बढनेसे अपनी इंद्रशक्ति विकसित होती है।

प्राणोंका इंद्रके साथ वही संबंध है कि जो सैनिकोंका सेनापतिके साथ होता है। मरुद्गण ये इंद्रके सैनिक होनेका वर्णन वेदमें है, इसका भी यही तात्पर्य है। जिस प्रकार निःशक्त सैनिकोंका सेनापति निर्बल होता है, ठीक उस प्रकार जिसके प्राण निर्बल होते हैं उसकी, इंद्रशक्ति भी निर्बल ही होती है।

पाठको! यहां देखिये कि वेदके मंत्र किस प्रकार आपका बल बढानेकी सूचना दे रहे हैं। इस लिये आपको उचित है, कि आप इस ढंगसे वेद-मंत्रोंका विचार कीजिये और शक्तिका विकास करनेके सनातन नियम जान-कर उनके अनुष्ठानसे अपनी शक्ति विकसित करनेका पुरुषार्थ कीजिये।

(१९) प्राणायाम की पूर्व तैयारी।

इस समयतकके विचारसे पाठकोंको पता लगाही होगा, कि प्राणायाम एक उपाय है कि, जिससे इंद्रशक्ति विकसित हो जाती है। इसलिये क्रम-प्राप्त प्राणायामकी पूर्व तैयारीका विचार करना है।

स्थानशुद्धि– प्राणायामका विचार करनेके समय प्राणायामकी विधि जाननेके पूर्व किस स्थानपर प्राणायाम करना चाहिये, इस बातका ज्ञान अत्यावश्यक है। क्यों कि अयोग्य स्थानमें प्राणायाम करनेके कारण कई प्रकारकी बीमारियां उत्पन्न होती हैं। ऋषिकालकी सब व्यवस्था अब रही नहीं और जो व्यवस्था आज कल प्राप्त हुई है, वह स्वास्थ्यसुखकी दृष्टिसे अत्यंत हानिकारक है। ऋषिकालमें आयुके प्रथमके २५ वर्ष गुरुकुलके अरण्य-

वासमें जाते थे। पचीस वर्षके पश्चात् के २५ वर्ष गृहस्थाश्रममें नगरमें व्यतीत होते थे। इनके पश्चात् अर्थात् ५० वर्षकी आयुके नंतरकी आयु प्रायः वानप्रस्थ और संन्यासके निमित्त वनमें ही व्यतीत होती थी। अर्थात् आयुका बहुतसा भाग वनके शुद्ध वायुमंडलमें व्यतीत होता था। परंतु आज कल बालपनसे लेकर मरनेतकका संपूर्ण आयुष्य तंग गलियोंके तंग कमरोंमें जाता है। इस प्रकारके कमरोंमें प्राणायाम करना कदापि उचित नहीं है।

मकानके पाससे गली नालीयां और मोरियां चल रही हैं, वहांसे अनेक मक्खियां कमरोंमें आ रही हैं, दुर्गंधयुक्त वायुसे मकानके कमरे भर रहे हैं, एक एक मकानमें अनेक कुटुंब खींचा खींच करके निवास कर रहे हैं, इस प्रकारके स्थान प्राणायामके लिये सर्वथा अयोग्य हैं।

मनुष्यके उच्छ्वासका जो दूषित वायु बाहिर जाता है, वह विषयुक्त होता है। उच्छ्वासका विषपूर्ण वायु किसीके फेंफडोंमें सदा जाता रहा, तो उसकी अकाल मृत्यु होनेमें कोई शंकाही नहीं है। तंग गलियोंमें यही बात होती है।

इसलिये प्राणायामके लिये स्थान ऐसा चाहिये कि जहां वायु और सूर्यप्रकाश विपुल आता हो, जहां अपूर्व स्वच्छता और प्रसन्नता हो, घरके बाहिर अच्छा उद्यान हो और उसमें विविध प्रकारके सुगंधित फूल विकसित हुए हों। तथा आसपास किसी प्रकारकी अशुद्धि न हो।

इस प्रकार स्थानशुद्धिका विचार अवश्य करना चाहिये। स्थान एकांत हो, रम्य हो, प्रशस्त और निर्मल हो, तथा वहां उतने ही पदार्थ हों, कि जो इस इंद्रशक्तिके विकासके साथ संबंध रखते हों। जिस कमरे में रहना है, वह सब स्थान प्रतिदिन स्वच्छ और शुद्ध किया जाय और किसी प्रकार अस्वच्छता वहां न हो। क्यों कि जहां मलीनता होती है, वहां इंद्रशक्ति क्षीण होती है।

यदि वृक्षके नीचे बैठनेके लिये स्थान प्राप्त होगा तो सबसे उत्तम है।

स्थान प्रशस्त होनेके साथ साथ उपद्रव रहित होना चाहिये। "घर" का नाम ही वेदमें "क्षय" है, इसलिये क्षयके साथ जितना कम रहा जाय उतना अधिक अच्छा है। घरके बाहिर रहनेसे सूर्यके द्वारा प्राप्त होनेवाली इंद्रशक्तिके साथ मनुष्यका संबंध आता है, इसलिये इंद्रशक्तिकी वृद्धि होनेमें सहायता हो जाती है। वृक्षोंमें भी वडका वृक्ष इस कार्यके लिये बडा उपयोगी है। वडके रसके कई गुण हैं। इस वडमें ऐसी एक विलक्षण शक्ति है, कि जो मनुष्यको दीर्घजीवी बना देती है। यह शक्ति इस वृक्षमें रहती है, इसीलिये वडका वृक्ष प्रायः अति दीर्घजीवी होता है। ऋषिमुनि वडके नीचे अथवा पास रहते थे, इसका कारण केवल इसकी छाया नहीं है, प्रत्युत उसके अन्य गुण ही है। पाठकोंमें जो वैद्य हैं, उनको इसका अधिक विचार करना चाहिये। अस्तु।

स्थानशुद्धिका विचार करनेके समय और एक बातका अवश्य विचार करना चाहिये, वह बात "धूलि" है। घरमें झाडू लगानेके समय जो धूलि अथवा कचरा हवामें उडता है, तथा मार्गपरसे जो धूली वायुसे हवामें उडती है, कपडे झटकनेके समय जो कचरा उडता है, तथा इस प्रकार अनेक कारणोंके सबब जो धूलिके कण हवामें उडते हैं, वे भी प्राणायामके लिये और उसी प्रकार साधारण श्वासके लिये भी, हानिकारक हैं। यह धूलि फेंफडोंमें जाकर अनेक प्रकारके अनर्थकारक रोग उत्पन्न करती है। इस लिये स्थानशुद्धि करनेके समय धूलि न उडे ऐसा प्रबंध करना चाहिये। यह बात अनेक प्रकारसे साध्य हो सकती है। झाडू देनेके पूर्व पानीका थोडासा छिडकाव करनेसे अथवा लकडीका भूसा गीला करके उसको झाडूके पूर्व भूमिपर छिडकनेसे तथा कई अन्य उपायोंसे धूलि उडनेको रोका जा सकता है। नगरके निवासकी अपेक्षा उद्यानका तथा वनका निवास अधिक आरोग्यवर्धक होनेका कारण ही मुख्यतया यह है।

वैदिक कालके घरोंके साथ उद्यान अथवा पुष्पवाटिकाएं अवश्य रहती थीं। "उद्याननगरी" की कल्पना वैदिक है। वेदमें "उद्यान" शब्दका

अर्थ जैसा "बाग" है, उसी प्रकार उसका उर्थ उन्नति भी है। ऊपर चढना, उन्नत होना यह भी अर्थ "उद्यान" (उत्–यान) शब्दमें है। इसका तात्पर्य यह है, कि घरके साथ उद्यान और पुष्पवाटिका रहनेसे उस घरमें रहनेवालोंकी उन्नति होनेमें सहायता होती है। घरके साथ उद्यान रहनेसे धूलीकी बाधा कम होती है, यह भी एक कारण है कि जो मनुष्योंकी आयु बढाता है। इसके अतिरिक्त भी अनेक लाभ हैं, जिनका उल्लेख यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है।

वैदिकी धर्मको आचरणमें लानेके लिये इस प्रकार उद्याननगरीकी रचना होनी चाहिये। यदि इसकी सिद्धता होनेमें देरी होगी, तो कमसे कम "इंद्रशक्ति" का विकास करनेके इच्छुकोंको उचित है कि वे मिलकर एक छोटासा सुरम्य स्थान नगरके बाहिर बनावें कि जहां इसका अनुष्ठान हो सकता है। तबतक हरएक पाठक अपने स्थानमें ही जहांतक हो सके पवित्रता रखनेका यत्न करें और अपनी उन्नति करनेका पुरुषार्थ करें।

(२०) आसन और प्राणायाम।

उक्त प्रकारके पवित्र स्थानमें आसनोंका अभ्यास करना चाहिये। अपनी "इंद्रशक्ति" बढानेके लिये "आसनोंका अभ्यास" अत्यावश्यक है। आसनोंसे जिस प्रकार शरीर निर्दोष हो जाता है, वैसा किसी अन्य व्यायामसे नहीं। आसनोंमें यह खूबी है कि श्वासोंकी संख्या न बढते हुए व्यायाम होकर नसनाडियों और पुट्ठोंकी शुद्धता होती है। यह शुद्धता इंद्रशक्तिके विकासके लिये अत्यावश्यक है।

शरीर शुद्धिके साथ बलसंवर्धनकी इच्छा हो तो "सूर्यभेदन" व्यायाम कर सकते हैं। यह आपकी इच्छापर निर्भर है। यह कोई अत्यावश्यक बात नहीं है। परंतु आसनों और इस व्यायामके पश्चात् शीर्षासन करना अत्यावश्यक है,और यह कमसे कम आधा घंटातक करना चाहिये। अन्य आसनोंका अभ्यास यद्यपि लाभकारी हैं तथापि प्रतिदिन आवश्यक है, ऐसी बात

नहीं है; जैसा शीर्षासन प्रतिदिन अत्यावश्यक है। तथा इंद्रशक्तिवर्धनके-लिये जो शीर्षासन करना होता है, उसमें श्वास जितना शांतिसे चलाया जाय उतना लाभकारी होता है। अर्थात् वेगसे चलाना नहीं चाहिये। अभ्यास होनेपर शीर्षासनका श्वासपर इष्ट परिणाम होने लगता है। जो शीर्षासनके अभ्यासी हैं उनको पता है कि पंद्रह मिनीट शीर्षासनमें स्थिर रहनेके पश्चात् श्वासकी गति स्थिर, शांत, गंभीर और मंद हो जाती है और यह अत्यंत इष्ट है। चित्तको स्थिर करनेके कार्यमें इस शीर्षासनसे अत्यंत लाभ होते हैं। मज्जातंतुओंका स्वास्थ्य इससे प्राप्त होता है। जिनका मस्तिष्क कमजोर है, वे इस अभ्याससे बहुतही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके अन्य लाभ बहुतही हैं, परंतु उनका उल्लेख यहां करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार प्राणकी गति शांत और गंभीर होनेके पश्चात् तथा आसनोंके अभ्यासका परिश्रम दूर होनेके नंतर प्राणायामका समय आ जाता है।

यहां इस बातका स्मरण रखना चाहिये कि यदि प्राणायामका अभ्यास विशेष अधिक करना है, तो उसके पूर्व या उन दिनोंमें ऐसा कोई व्यायाम करना प्रशस्त नहीं है, कि जिससे श्वासोंकी संख्या अत्यधिक होती है। परंतु अपने कार्यके लिये अधिक प्राणायाम करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। साधारण प्राणायाम वह होता है कि, जो दिनमें एकवार या दो वारही किया जाता है। इसके लिये प्रातः और शामका समय प्रशस्त होता है विशेष प्राणायामका अभ्यास जो करना चाहते हैं, वे दिनमें चार वार करते हैं। और प्रति समय दो दो घंटे अभ्यास करते हैं। ऐसे विशेष प्राणायाम करनेवालोंको ऐसा कोई व्यायाम करना नहीं चाहिये कि जिससे श्वासोंकी संख्या अधिक होती हो। परंतु हमारे कार्यके लिये इतना अधिक प्राणायाम करनेकी आवश्यकता नहीं है। सबेरे दस पंद्रह मिनिट और उतनाही शामको अभ्यास पर्याप्त है। इस लिये पूर्वोक्त प्रकार आसनोंके अभ्यासके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये।

इंद्रशक्तिको बढानेवाले प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये सिद्धासन, सुखासन या बद्धपद्मासन प्रशस्त होता है। आसन ठीक प्रकार लगाकर पीठकी रीढ ठीक सीधी रखकर गर्दन और सिर सम रेखामें रखना चाहिये। पश्चात् परमेश्वरका स्मरण करके " मैं उस परमात्माके अंदर हूं और वह मेरे अंदर तथा चारों ओर बाहिर है " इस विचारसे अपना मन भरपूर करना चाहिये। चार पांच मिनिट यह विचार अपने मनके अंदर स्थिर करनेके पश्चात् " अपने हृदयके अंदर जो बीजरूप इंद्रतत्त्व है " उसका चिंतन कीजिये। हृदयपर हाथ रख कर कहिए कि " इस मेरे हृदयके स्थानमें बीजरूप इंद्रशक्ति है, जो अंतरिक्षव्यापक इंद्रतत्त्वका अंश है, यह शक्ति प्राणशक्तिके आयामसे बढती है, इस लिये अब जो प्राणायाम मैं करूंगा, उससे मेरी इंद्रशक्ति बढ जायगी। " यह भावना अपने मनके अंदर पांच मिनिट तक धारण कीजिये और इस बात पर विश्वास रखिये कि परम पिता परमात्माकी कृपासे आपकी इंद्रशक्ति अवश्य ही बढेगी। कृपा करके इस समय कमसे कम अपने मनके अंदर कुतर्क न रखिये। क्यों कि मनमें कुतर्क आने लगे तो परम पिताके साथ अपने आत्माकी एकतानता नहीं होती, और जो शक्ति प्राप्त होनी है, वह प्राप्त नहीं होती। इसलिये इस समय कोई कुतर्क मनमें खडे न कीजिये।

इतना होनेके पश्चात् बाह्य मरुतोंका अंश ही अपने अंदर प्राण बना है और अपने प्राणकी शक्ति विश्वव्यापक मरुतोंकी सहायतासे बढ सकती है। इसके लिये प्राणायाम ही एक उपाय है, तथा जिस प्रकार मरुतोंसे इंद्रशक्ति बढती है, उसी प्रकार प्राणोंके बलसे अपनी इंद्रशक्ति अवश्य बढेगी, क्यों कि बाह्य जगत् का जो व्यापक नियम है, वही अपने अंदरके छोटे विश्वमें भी कार्य कर रहा है। यह भाव एक दो मिनिट अपने स्थिर कीजिये और मन शांत, गंभीर और ईश्वरकी भक्तिसे परिपूर्ण करके निम्न लिखत विधिके अनुसार प्राणायाम कीजिये।

नाकके द्वारा मंद वेगसे श्वास फेंफडोंके अंदर पुरा भर दीजिये। श्वास

प्रथमतः उदरकी ओरके; फेंफडोंके भागमें चला जाय और क्रमसे फेंफडोंके ऊपरके भाग पूर्ण भर जांय। इस प्रकार "पूरक" कीजिये। पूरक होनेके पश्चात् थोडासा "कुंभक" कीजिये। पश्चात् मंद वेगसे "रेचक" कीजिये। रेचकके समय एकदम श्वास न छोड दें। इस विषयमें ठीक प्रकार सावधानता रखिये कि रेचकके समय बहुत घबराहट न हो और एकदम श्वास न छूटे। यदि एकदम श्वास छोडना पडा, तो वह बलकी हानि करता है। इसलिये रेचक मंद वेगसे ही होना चाहिये। पूरक और रेचकके समय नाकसे ही श्वासको लेना चाहिये। श्वासके आने और जानेका शब्द बहुत बडा नहीं परंतु मन्द शब्द होता रहे। यह प्राणायाम इंद्रशक्तिका विकास करनेके लिये ही खासकर है। इसमें "बाह्य कुंभक" की आवश्यकता नहीं है, "अंतः—कुंभक" भी बडी देरतक करनेकी आवश्यकता नहीं है।

ये प्राणायाम प्रथम दिन दोचार किये जांय, और प्रतिदिन अथवा प्रति दो दिनोंमें एक दो बढाये जांय। जब अधिक संख्या अर्थात् दस या पंद्रह तक प्राणायामोंकी संख्या हो जाय, तब किंचित् कुंभक बढानेका विचार करना योग्य है। परंतु स्मरण रहे कि, अपनी शक्तिसे अत्यधिक कुंभक करना योग्य नहीं, इसलिये शनैः शनैः प्राणको वशमें लाकर कुंभकका प्रमाण अपनी शक्तिके अनुसार रखिये। यह प्राणायाम शनैः शनैः बढानेपर १५ की संख्या पंद्रह दिनोंमें अथवा एक मासमें हो जाती है। तत्पश्चात् १५ या २० मिनिटतक ही सबेरे और उतना शामको अभ्यास करना पर्याप्त है, इससे अधिक नहीं। इस अवधिमें जितने प्राणायाम होंगे, उतने पर्याप्त हैं। जैसा जैसा कुंभक बढेगा, उतनी प्राणायामोंकी संख्या कम होती जायगी, यह बात यहां पाठकोंके ध्यानमें आगई होगी। खाली पेट रहनेकी अवस्थामें यह अभ्यास करना योग्य है। प्राणायाम करनेके पश्चात् आधा घंटा व्यतीत होनेके पश्चात् खानपान किया जा सकता है, परंतु खानेके पश्चात् तीन चार घंटे उक्त प्राणायामका अभ्यास

करना नहीं चाहिये।

आसनोंका अभ्यास पर्याप्त प्रमाणमें सबेरे करनेपर शामको फिर करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी अवस्थामें शामको केवल पंद्रह मिनिट शीर्षासन करना पर्याप्त है। शेष अभ्यास पूर्ववत् करना चाहिये।

इस प्रकार नियमपूर्वक पांच या छः मासतक अभ्यास करनेसे इंद्रशक्ति बढनेका अनुभव आने लगता है, विशेषतः बुद्धि और मानसिक शक्तिमें उन्नति स्पष्ट अनुभवमें आती है। इसके पश्चात् भी यह अभ्यास नियमपूर्वक चलाना चाहिये और दिव्य इंद्रशक्ति जितनी बढाई जा सकती है, उतनी बढानी चाहिये। इसके अभ्यास करनेके समय वीर्यकी रक्षा करनेसे बडे लाभ होते हैं। वीर्यरक्षा करनेके उपाय " ब्रह्मचर्य " पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं।

(२१) प्रयत्नसे इंद्रशक्तिका वर्धन।

अपनी "इंद्रशक्ति" का संवर्धन करनेके अनुष्ठानके विषयमें वेदके अनेक मंत्र मनन करने योग्य हैं। उनमेंसे थोडे मंत्र यहां देता हूं—

इंद्रं वर्धन्ति कर्मभिः।　　ऋ. ९।४६।३

"पुरुषार्थ प्रयत्नोंसे इंद्रका सामर्थ्य बढाते हैं।" इस मंत्रसे यह स्पष्ट हो जाता है कि, इंद्रशक्तिके संवर्धनके साधक जो कर्म हैं, वे करनेसे ही इंद्रशक्ति बढ जाती है। ऋषिमुनि लोग इसी रीतिसे अपनी इंद्रशक्ति बढाते रहे। उस प्रकारके पुरुषार्थ प्रयत्न करनेपर इस समय भी चतुर लोग अपनी इंद्रशक्ति बढा सकते हैं। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

इंद्रं बलेन वर्धयन्।　　यजु. २१।३२

" बलके साथ इंद्रका संवर्धन करना है।" इस मंत्रभागमें पुरुषार्थ प्रयत्न बलके साथ करना चाहिये, यह बात स्पष्ट कर दी है। उपनिषद् भी कहता है कि—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।　　मुंड० ३।२।४

" बलहीन मनुष्य इस आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता। " यह बात जैसी आत्माके विषयमें सत्य है उसी प्रकार इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेमें भी सत्य है। निर्बल मनुष्य किसी प्रकारकी उन्नति प्राप्त ही नहीं कर सकता, इसीलिये " वैदिक धर्ममें" बल-संवर्धनपर बहुतही जोर दिया है। शारीरिक, इंद्रियविषयक, मानसिक और बौद्धिक बलके साथ जो योग्य प्रयत्न किये जाते हैं, उनके द्वारा इंद्रशक्ति बढ जाती है और यह बढी हुई इंद्रशक्ति फिर पूर्वोक्त बलोंको द्विगुणित करती है। यह अन्योन्याश्रय विचार करने योग्य है। बलसे इंद्रशक्ति बढती है और इंद्रशक्तिसे बल बढ जाता है। पाठकों! इस नियमको ठीक प्रकार स्मरण रखिये। यह नियम आपकी उन्नति करेगा। इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखिये—

इंद्र इंद्रियैः.........शर्म यंसत् ॥ ऋ. १।१०७।२

"इंद्र अपनी इंद्रशक्तियोंसे सुख देता है" इंद्रकी शक्ति इंद्रियोंमें आती है और वह सुख देती है, तथा इंद्रियोंके बलसे ही जो अनुष्ठान किया जाता है, उससे इंद्रका संवर्धन होता है। यह परस्पर सहाय्य करनेका प्रश्न अत्यंत महत्त्वका है। इस नियमके ऊपर ही कई सामाजिक और राष्ट्रीय नियम बने हैं। परस्पर सहकारिताका उपदेश इस प्रकार वेद दे रहा है। अस्तु। पूर्वोक्त रीतिसे इंद्रशक्तिका संवर्धन किया जाता है, इसमें प्रारंभ शुद्ध विचारोंके साथ किया जाता है, अर्थात् अपने अंदर शक्तिपोषणके विचार धारण करना मुख्य बात है। हीन विचारोंको मनमें कोई स्थान देना नहीं चाहिये। इस विषयमें वेदकी आज्ञा स्पष्ट है, देखिये—

इंद्रं वर्धन्तु नो गिरः। ऋ. ८।१३।१६

" हमारी वाणी इंद्रशक्तिका संवर्धन करे। " वाणीसे संवर्धन करनेका उपाय यह है कि, उत्तम ओजस्वी भावोंके साथही हमारे मुखसे शब्द निकलें। कोई ऐसा शब्द हमारे मुखसे न निकले कि जिससे हीन भाव अथवा निर्बलताका विचार व्यक्त होता हो। इसमें मानसशास्त्रका एक बडा भारी तत्त्व है। जो भाव शब्दोंद्वारा व्यक्त होता है, वह मनमें जम

जाता है, इसलिये हीन भावनाके शब्द बहुतही बुरा परिणाम करते हैं, इस कारण वेद आपको बडी सावधानताकी सूचना दे रहा है। इस विषयमें और देखिये—

तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम्। 　　ऋ. ८।१३।१८

"सदा बढनेवाले इंद्रको हमारी वाणी बढावे।" अर्थात् हमारी वाणीमें ऐसा कोई शब्द प्रयुक्त न हो, कि जो इंद्रशक्तिका संवर्धक न हो। इसका तात्पर्य यह है, कि हम बोलने और सुननेमें यह सावधानी रखें, कि न हीन भावका शब्द बोला जाय और न सुना जाय। लेखोंमें भी ऐसा कोई वाक्य न लिखा जाय जो नीच भावनासे भरा हुआ हो। जो मनुष्य अपनी इंद्रशक्ति बढानेके उद्योगमें हैं, उनको उचित है, कि वे चुने हुए उत्साहवर्धक शब्द बोलें, शक्तिके प्रोत्साहक ग्रंथ पढें और ऐसे मित्रोंके साथ रहें, कि जो धीर और गंभीर विचारोंकी जागृति करनेवाले हों। कभी निरुत्साही मनुष्योंके साथ सहवास न करें, क्यों कि इंद्रशक्तिका मनोभूमिकाके साथही विशेष संबंध है। इसीलिये वेद कहता है —

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथा यथा मतयः सन्ति नृणाम्॥
इंद्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः॥
ऋ. १०।१११।१

"(१) हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् मनुष्यों! अपनी (मनीषां) बुद्धिको (प्रभरध्वं) प्रयत्न करके सुविचारसे भर दें। (२) मनुष्योंकी (यथा यथा) जैसी जैसी (मतयः) बुद्धियां होतीं हैं, वैसेही मनुष्य बनते हैं। (३) हम (सत्यैः कृतेभिः) सत्यपूर्ण शुभ कर्मोंसे इंद्रको (एरयाम) प्राप्त करें। (४) वही वीर (विदानः) ज्ञानी और (गिर् – वनस्युः) वाणीसे सेवन करने योग्य है।"

इस मंत्रमें इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेके कई नियम उत्तम प्रकारसे कहे हैं– (१) मन और बुद्धिको उत्तम विचारोंसे सदा भरपूर रखना, अर्थात् किसीभी समय कोई हीन विचार मनमें न लाना, यह पहिला आवश्यक

कर्तव्य है। यह करनेका कारण यह है कि (२) मनुष्योंकी जैसी बुद्धि और मनःप्रवृत्तियां होती हैं, वैसाही मनुष्य होता है। इस लिये उत्साही विचारोंके साथ ही मनुष्यकी हरएक शक्ति बढती है और निरुत्साहके साथ शक्तिका क्षय होता है। यही कारण है, कि हरएक मनुष्यको अपनी विचारपरंपराका अवश्य विचार करना चाहिये, कि यह विचारसरणी शक्ति-वर्धक है, या शक्तिनाशक है? इस विषयकी वैदिक रीति यह है—

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः। इंद्रं वर्धन्ति क्षितयः॥

ऋ. ८।१६।९

"(तं इंद्रं) उस इंद्रकी अर्क, साम और गायत्रोंसे (चर्षणयः क्षितयः) पुरुषार्थी मनुष्य बढाते हैं।"

"अर्क, साम और गायत्र" ये तीन साधन हैं, कि जिनसे इंद्रशक्तिकी वृद्धि होती है। (१) "गाय-त्र" शब्द "प्राणोंका त्राण" करनेका भाव बता रहा है। प्राणोंका त्राण, प्राणोंका रक्षण, प्राणशक्तिका संवर्धन प्राणायामसे होता है, इसलिये यह शब्द प्राणायाम तथा प्राणरक्षणके अन्य नियमोंका सूचक है। (२) "साम" शब्द "शांति" का सूचक है। मन बुद्धि चित्त अहंकार तथा इंद्रियादिकोंमें जो चंचलता रहती है, उसको दूर करके उसके अंदर शांति और गंभीरता स्थापन करना इससे सूचित होता है। (३) "अर्क" शब्द उपासना, प्रकाश, वीर्य, ज्ञान, ज्ञानी और अन्नका वाचक कोशोंमें है। यहां इन्द्रशक्तिके संवर्धनके प्रकरणमें उपासना, ज्ञान, वीर्य और अन्न, ये अर्थ सुसंगत हो सकते हैं।

इन तीनों अर्थोंका विचार करनेसे पूर्व मंत्रका यह तात्पर्य ध्यानमें आसकता है कि– (१) प्राणका बल बढाने, (२) मनकी चंचलता दूर करके उसमें एकाग्रता लाने और (३) ज्ञानपूर्वक उपासना करनेसे इंद्रशक्तिका संवर्धन होता है। ये तीन उपाय पाठकोंको ध्यानमें धारण करने चाहिये। अब इसी विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

इंद्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ऋ० ९।६३।५

"जो (अप्-तुरः) प्रयत्नशील पुरुषार्थी लोग (विश्वं आर्यं) विश्वको आर्य (कृण्वन्तः) बनानेवाले हैं और जो (अ-राव्णः) दान न देनेवालोंको अर्थात् अनुदार स्वार्थी मनुष्योंको दूर करते हैं, वे अपने पुरुषार्थसे (इंद्रं वर्धन्ति) इंद्रका संवर्धन करते हैं।"

(१) स्वार्थभावको दूर करना और परोपकारी शील धारण करना, (२) सबको आर्य अर्थात् प्रगतिशील बनाना और (३) स्वयं सतत अविश्रांत पुरुषार्थ करना, ये तीन सद्‌गुण हैं, कि जो इंद्रशक्तिको बढानेवाले हैं। इसलिये जो इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेके इच्छुक हैं, उनको यह मंत्र विचार करने योग्य है। इसी विषयमें और एक मंत्र देखिये—

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ॥
इंद्रं क्षोणीरवर्धयन् ॥ ऋ० ८।१३।१७

"(प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) उच्च रक्षणोंसे अपना (अवस्यवः) संरक्षण करनेवाले (वि-प्राः) ज्ञानी (क्षोणीः) मनुष्य (तं इंद्रं वर्धयन्) उस इंद्रको बढाते हैं।"

(१) सब प्रकारके संरक्षक नियमोंका पालन करके अपना संरक्षण करनेकी इच्छा करना, (२) हरप्रयत्न करके अपनी उन्नतिका विचार करना, (३) ज्ञानी बनकर पुरुषार्थ प्रयत्नसे उन्नतिका यत्न करना, ये गुण इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेवालोंमें अवश्य चाहियें। यह तात्पर्य पाठक ऊपरके मंत्रमें देख सकते हैं।

इन सब मंत्रोंका तात्पर्य यह है, कि अपनी शक्तिका विकास करनेकी प्रबल इच्छा, विकास करनेके लिये महान् पुरुषार्थ करनेकी सिद्धता और सब प्रकारके योग्य साधनोंका सदुपयोग करनेसे निश्चयसे उन्नति होती है। इस विषयमें जो मंत्र ऊपर दिये हैं उनका विचार हरएक पाठक करें और अपनी उन्नतिके नियम जानकर उनका आचरण करके अपनी शक्ति

विकसित करें। वैदिक धर्मका जीवन अमलमें लानेका यही एक मात्र उपाय है। आशा है, कि वैदिक धर्मके प्रेमी सज्जन इसका अवश्य विचार करेंगे। अस्तु। इस प्रकार इंद्रशक्तिके विकासके नियम देखनेके पश्चात् अब इस मार्गके साधक पथ्यका विचार करना चाहिये।

(२२) पितापुत्र-संबंध।

बाह्य सृष्टिमें जो पृथ्वी, आप, तेज, वायु आदि तत्त्व हैं उनके अंश अल्प प्रमाणमें हमारे शरीरमें रहे हैं। मानो कि जगद्व्यापक जो तत्व हैं वे पितृरूप हैं और अपने शरीरमें जो उन तत्वोंके अंश हैं वे उनके पुत्र हैं। पाठक जानते ही हैं कि पितापुत्रमें विरोध नहीं चाहिये। वायु पिता है, प्राण उसका पुत्र है, शुद्ध वायुके साथ इस प्राणका संबंध रहनेसे ही प्राणका बल बढता है। इसी प्रकार सूर्यप्रकाशसे चक्षुका आरोग्य होता है, तथा इतर तत्वोंके साथ हमारे शरीरका आरोग्य, बल, तथा ओज स्थिर रहता है। अब देखिये कि तंग मकानमें बंद रहनेसे पूर्वोक्त पिता-पुत्र-संबंधमें पर्दा खडा होता है। इस कारण उनमें विरोध उत्पन्न होता है और यही विरोध मनुष्योंके अनारोग्यका कारण है। इसलिये मनुष्योंको आवश्यक है कि वे खुली हवामें तथा खुले प्रकाशमें जितना अधिक रह सकें उतना रहें, यह इंद्रशक्तिको बढानेका पहिला पथ्य है। यदि मनुष्य घरके बाहिर ही रहेंगे, तो उनको सौमें न्यानवे रोग हो ही नहीं सकते। आर्ष वैद्यक ग्रंथोंमें स्पष्ट कहा है कि—

" जबसे लोग मकानोंमें रहने लगे हैं, तबसे रोग उत्पन्न हुए हैं। "

यह बिलकुल सत्य है। इसी लिये ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास अर्थात् इन तीनों आश्रमोंमें रहनेवाले लोग जंगलमें रहते हैं। वैद्यक आश्रमधर्मका यह मुख्य तत्त्व है कि उसमें तीनचौथाई आयुष्यका भाग जंगलकी खुली हवामें व्यतीत होता है। पाठक इसका अवश्य विचार करें और तत्त्वका अमल जितना हो सकता है, अवश्य करें।

(२३) ऋतुओंका साक्षात्कार।

हरएक मनुष्य ऋतुओंको जानता है, परंतु बहुत थोडे विद्वान् ऐसे हैं कि जिन्होंने वैदिक दृष्टिसे ऋतुओंका साक्षात्कार किया है। प्रायः सब लोग समझते हैं कि, दो मासका एक ऋतु है, और इस प्रकार सालमें छः ऋतु होते हैं। यह बिलकुल स्थूल दृष्टि है। वेदकी दृष्टि इससे भिन्न है। वेदकी दृष्टिसे ऋतु प्रतिदिन होते हैं, प्रत्येककी आयुमें होते हैं, प्रत्येक वर्षमें होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक जातिके जीवितमें भी होते हैं। उदाहरणके लिये देखिये कि "वसंत ऋतु" का अवस्थान कितने स्थानोंमें किस प्रकार है। "वसंत ऋतु" दिनमें प्रातःकाल है, मानवी आयुमें ब्रह्मचर्याश्रम है, वर्षमें चैत्र वैशाखके दो मास हैं, जातिमें उदयोन्मुख वृत्ति है, इत्यादि प्रकार वसंत ऋतुकी विभूति है। इसका अनुभव करना चाहिये। इसी पद्धतिसे अन्य ऋतुओंकी विभूति भी देखनी उचित है। इसीको ऋतुओंका साक्षात्कार कहते हैं।

ऋतुओंका साक्षात्कार इस प्रकार करनेसे शक्तिवर्धनके कार्यकी ऋतुचर्या और दिनचर्या निश्चित करना सुगम हो जाता है। देखिये कि, दिनके प्रहरोंमें प्रातःकालका समय अधिक बलसंपन्न और उत्साहपूर्ण होता है। इसी प्रकार वर्षमें वसंत ऋतु, आयुमें ब्रह्मचर्यकी आयु, तथा इसी प्रकार सब ही वासंतिक समय बलप्रद होते हैं। यदि आपको अपने अंदर इंद्रशक्तिका विकास करना है, तो आपको उचित है कि आप इस समयसे लाभ उठावें। जो शक्तिवर्धनका अनुष्ठान करना है वह इस समय विशेष रूपसे करें और इस समयके सूर्यके इंद्रशक्तिपूर्ण किरणोंसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त करें। आर्ष ग्रंथोंमें जो दिनचर्या और ऋतुचर्या लिखी है, इसमें यही तत्व है, इसलिये इसका आपभी अधिक विचार करके अपनी दिनचर्या उक्त तत्त्वके अनुरूप बनाके जितना हो सकता है, उतना इंद्रका बल अपने अंदर बढाइये।

(२४) इंद्रशक्तिवर्धक खानपान ।

वारुणीपान, सोमपान ।

इससे पूर्व बताया जा चुका है कि इंद्रशक्तिका नाशक खानपान कौनसा है। अब बताना है कि इंद्रशक्तिको बढानेवाला पथ्यकारक खानपान, कौनसा है। इस विचारमें सबसे प्रथम " वारुणी–पान " का विचार करना चाहिये।

साधारणतः सब कोशोंमें " वारुणी " शब्दका अर्थ ' मद्य ' दिया है !! इसलिये पाठक ' वारुणीपान ' का तात्पर्य ' मद्य–पान ' ही समझेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं है !!! परंतु वैदिक दृष्टिसे वारुणीपानका तात्पर्य औरही है। वेदमें वरुण देवता जलकी अधिष्ठात्री देवता है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु । अथर्व ५।२४।१२

" वरुण जलका अधिष्ठाता है, वह मेरा रक्षण करे। " इस मंत्रमें वरुणका जलके साथ संबंध बताया है, तथा और देखिये—

अपो निषिंचन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु
गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ॥ अ. ४।१५।१५

" हे वरुण ! तू हमारा (पिता) रक्षक (अपः निषिंचन्) जलकी वृष्टि करता हुआ (अपां गर्गराः) जलके प्रवाह (श्वसन्तु) फैलें, इस प्रकार भूमिपर (अपः सृज) जल छोडो और हमारा (असु–रः) प्राणदाता बन। "

इस प्रकार वरुणका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। वरुण ऊपरसे जो वृष्टिका जल भेजता है, वही " वारुणी वृष्टि " है। इस जलका पान करनेका नाम " वारुणी पान " है। मद्यका इसके साथ कोई संबंध नहीं है। वृष्टिका जल पीना आरोग्यवर्धक है, इसीलिये वरुणके विशेषण (असु–र) प्राणरक्षक, (पिता–पाता) संरक्षक, इत्यादि वेदमें आगये हैं। जलके

नामोंमें, (रेतः) वीर्य, (सु-क्षेम) उत्तम कल्याण, (भेषजं) औषध, (अ-क्षर) अक्षयकारी, (सुखं) इंद्रियोंको उत्तम अवस्थामें रखनेवाला, (पवित्रं) शुद्ध, (अ मृत) अमर, आदि शब्द आ गये हैं। ये शब्द जलके गुणधर्म बता रहे हैं, वह जल वरुणदेवताद्वारा प्राप्त होता है, इसलिये उसको " वारुण-जल " किंवा " वारुणी वृष्टि " कहते हैं। वृष्टिका जल शुद्ध होता है, इसलिये उसका पीना आरोग्यवर्धक होता है। तथा इस वृष्टिजलमें अंतरिक्षस्थ इंद्रशक्तियुक्त प्राणभी अधिक होता है।

" अमर-वारुणी " नाम भी वृष्टिजलका है। अमरलोक अंतरिक्ष है, जहां मेघमंडल होता है। वहांसे जो जल आता है, अर्थात् वृष्टिद्वारा प्राप्त होता है, वही " अमर-वारुणी " है। वास्तवमें इस अमर लोकसे जो जल वृष्टिद्वारा प्राप्त होता है, उसीका नाम अमृत है। "अ-मर" लोकसे जो मिलता है, वही " अ-मृत " होता है। तात्पर्य " अमृत " नाम वृष्टिसे प्राप्त " जल " का है। " अमर " और " सुर " ये शब्द एक अर्थवाले ही हैं। अमरलोक और सुरलोकका भाव एक ही है। अमरलोकसे वृष्टिद्वारा " अमृत " अथवा " अमरवारुणी " का जल मिलता है, वही " सुर-लोक " से आता है, इसलिये उसको " सुरा " कहते हैं। सुरलोकसे जो वृष्टि आती है, वही " सुरा " है। निघंटुके जलवाचक नामोंमें " सिरा, सुरा, सूरा " ये पाठ हैं। जलवाचक सुरा शब्दका तात्पर्य वृष्टिजल ही है।

" वारुणी, अमरवारुणी, सुरा " ये शब्द एक समयमें " वृष्टिजल " के वाचक थे, इसमें कोई शंका नहीं है। यद्यपि आजकलके कोशोंमें इनका अर्थ " मद्य " ही दिया होता है, तथापि पूर्वोक्त संबंध देखनेसे मूल अर्थका पता लग सकता है। परंतु यहां देखना है कि वृष्टिजलवाचक शब्द मद्यवाचक क्यों हुए ? इसका कारण दोनोंमें बननेकी समानता है। सूर्यकिरणोंसे पृथ्वीपरके जलकी भाप होकर ऊपर जाती है और वहां कुछ काल ठहरकर शीतताके साथ संबंध हो जानेसे उसका जल बनकर वृष्टि

होती है; इसी प्रकार मद्य बनता है। दोनोंमें समता "(१) द्रवकी भांप होकर ऊपर जाना और (२) उस भांपका फिर द्रव पदार्थ बनना" यह है। इसी कारण "वृष्टिजल" वाचक वारुणी, अमरवारुणी तथा सुरा शब्द "मद्य" वाचक बने हैं। अस्तु।

जिस "शुंडा-यंत्र" से जलकी भांप और भांपका फिर पानी बनाते है और इस रीतिसे वृष्टिजलके अभावमें शुद्धोदक प्राप्त करते हैं, उसी प्रकारके यंत्रसे-अबकारी भट्टीसे-मद्य बनाया जाता है। प्रारंभमें यह "आप्-कारी" अर्थात् "जल बनानेका यंत्र" था जिसको आजकल "आब-कारी" अर्थात् मद्यसंबंधी व्यवसाय कहते हैं!! आजकलकी बातोंको छोडकर हमें अपना विषय देखना है। उस विषयमें इतनाही कहना पर्याप्त है, कि वृष्टिका शुद्ध जल संगृहित करके रखा जाय और पीनेके कार्यमें उसीका उपयोग किया जाय, तो अमरत्व प्राप्त होगा, अर्थात् शीघ्र वार्धक्य नहीं होगा। जिन देशोंमें "आंधी" आकर हवामें धूली भर जाती है, उस देशकी वृष्टि अशुद्ध होती है। इस लिये जिस समय आंधीके विना वृष्टि होगी, अथवा जहां ऐसी वृष्टि होती है, वहां वृष्टिजल संग्रह करना उचित है। तथा प्रारंभकी वृष्टिका जल लेना योग्य नहीं है। ये नियम आर्य वैद्यकमें देखने योग्य हैं। इस प्रकार वृष्टिजल इकट्ठा करके सालभर बोतलोंमें भरकर रखा जा सकता है और वह पीनेसे बडे लाभ हैं।

पर्याप्त वृष्टिजल न मिलनेकी अवस्थामें "शुंडायंत्र" द्वारा भांपका पानी बनाकर काममें लाया जा सकता है, परंतु इसको पीनेके पूर्व इसको प्राणवायुसे परिपूर्ण बनाना चाहिये। कई वार एक बरतनसे दूसरेमें गिरा-नेसे जल प्राणवायुसे मिश्रित हो जाता है। इसके पश्चात् वह पीने योग्य होता है।

परमेश्वरकी अद्भुत सृष्टिमें दयालु परमात्माने कितने उपयोगी साधन मनुष्योंके उपयोगार्थ निर्माण किये हैं, परंतु मनुष्य ऐसा कुकर्मी बन रहा है, कि वह प्रायः उन सब साधनोंका दुरुपयोग करता है और अवनत

होता है। जिस प्रकार ईश्वर सूर्यकिरणोंके द्वारा पानीकी भांप बनाकर उसको शुद्ध करके वृष्टिद्वारा शुद्ध जल हमारे पास भेज देता है, उसी प्रकार कई वृक्ष उन्होंने बनाये हैं, कि जो शुद्ध, स्वादु, और विविध औषधिरसोंसे परिपूर्ण रसदार फल देते हैं। नारियलका वृक्ष इनमें प्रमुख है। इसके ऊंचे होनेके कारण भूमिसे खींचा हुआ जल वृक्षके आंतरिक छाननियोंसे छाना जाता है और शुद्ध होकर फलमें इकठ्ठा होता है। यही बात संपूर्ण वृक्षोंमें है। नारियलका जल आरोग्यवर्धक, बलकारक और शतशः गुण बढानेवाला है। अनार, संगतरे, नारिंगी आदि फलोंके रस उक्त कारण ही आरोग्यदायी हैं। इसके अतिरिक्त नारियलके वृक्षका रस जो वृक्षके कंठसे लिया जाता है, वह भी बडाही उपयोगी है। परंतु शोक है कि नारियल, ताल आदि वृक्षोंके कंठरससे आजकल मद्य अर्थात् शराब ही बनाकर बेची जाती है और ताजा रस उपयोगमें नहीं लाते!! कितना पदार्थोंका दुरुपयोग हो रहा है!!! इस प्रकार अनेक वृक्षों, फलों तथा वल्लियोंका अंगरस "इंद्र-शक्ति" का संवर्धक है। युक्तिसे इसका उपयोग करना चाहिये।

"सोम रस" इंद्रकी शक्ति बढानेवाला है और इसका वर्णन वेदमें सैंकडों मंत्रोंमें है। सोमवल्ली अंधेरेमें प्रकाशती है और चांदकी कलाओंकी क्षयवृद्धिके समान उस वल्लीके पत्तोंमें क्षयवृद्धि होती है। यह सोमवल्ली हिमालयके मौंजवान् पर्वतपर मिलती है, ऐसा सुनते हैं। प्रयत्नशील पुरुषोंको उचित है, कि वे हिमवान् पर्वतपर इसकी खोज करें और अपने देशमें उसको निर्माण करनेका यत्न करें। आजकल यह सोमवल्ली कहींभी प्राप्त नहीं होती। यदि यह वैदिक सोमवल्ली मिल जाय, तो उसका रस निःसंदेह इंद्रशक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। इसलिये उद्यमी पुरुष इसकी अवश्य खोज करें।

कई विद्वान् पंडित "सोम-रस" और मद्यको एकही मानते हैं। यूरोपीयन पंडितोंने इसके विषयमें बहुत गलती खाई है। वास्तवमें "वारुणि" और मद्यमें जितना भेद है उससे अधिक भेद "सोमरस" और मद्यमें

है । पाठक इस विषयमें गलती न करें । इंद्रशक्तिका संवर्धन करनेके जो उपाय वेदमें वर्णन किये हैं,उन सबमें सोमका रस प्रधान स्थान रखता है, इतनाही कह देना पर्याप्त है । " सोमयाग " एक वैदिक यागसंस्था है, जो केवल इंद्रशक्तिको बढानेके हेतुसेही वेदमें लिखी गयी है । परंतु इसका स्वरूपभी याज्ञिकोंने औरही बनाया है ।

इन सब बातोंका विचार करनेके लिये यहां स्थान नहीं है, केवल दिग्दर्शनही यहां किया है; इससे पाठक ही विचार करें और समझें कि वास्तविक कल्पना कितनी उच्च और सरल है ।

पेय पदार्थोंके विषयमें इतना लिखनाही यहां पर्याप्त है। खानेके पदार्थोंके विषयमें इतनाही पर्याप्त है, कि जो सात्विक भोजन है, वह इंद्रशक्तिका वर्धन करनेवाला ही है । चावल, गेहूं, गायका दूध, घी, मक्खन, छाछ, लस्सी, आदिके साथ सब्जी आदि पदार्थोंका सात्विक भोजन पाठक जानतेही हैं । यद्यपि खानपानके विषयमें विशेष लिखना इस समय आवश्यक है, तथापि लेखविस्तार बहुत होनेके भयमें इतनाही यहां पर्याप्त है ।

(२५) अंतिम शब्द ।

वेदमें इंद्रशक्तिके संवर्धनके विषयमें सैंकडों मंत्र हैं, उन सबका यथायोग्य विचार करके विस्तृत लेख लिखनेका विचार है । परंतु उस पुस्तकके बननेमें कालावधि बडी लगनी है । इसलिये जो पाठक इस विषयका विचार करते होंगे उनको इस विशेष रीतिका विचार करनेकी प्रेरणा करनेके हेतुसे यह सारांशरूप लेख लिखा है । आशा है, कि इस विषयकी खोज करनेवाले पाठक अपने विचारका परिणाम अवश्य प्रसिद्ध करेंगे ! एकही विषय अनेकोंद्वारा विचारित होनेसे बडा लाभकारी होता है ।

जो अन्य पाठक हैं, वे इस लेखमें लिखे विषयका अच्छी प्रकार मनन करें और जो हो सकता है, उतना अनुभव करके अपनी शक्ति बढानेका यत्न करें । इसी विषयकी बहुत खोज करके अनेक लेख लिखनेका संकल्प

है, उसकी पूर्णताके लिये अनुष्ठानी पाठकोंसे बहुत सहायता हो सकती है।

इस लेखमें जो बातें लिखीं हैं, सबकी सब करनेके लिये सुगम और लाभदायी हैं। केवल काल्पनिक बात एकभी नहीं है। इस लिये पाठक निःसंदेह इनका अनुष्ठान कर सकते हैं और जो जितना अनुष्ठान करेंगे, उनको उतना लाभ अवश्य होगा ।

इंद्रशक्तिके संवर्धनका विषय अत्यंत गंभीर है और वेदका यह मुख्य विषय है । इसी हेतुसे इसकी गंभीरता बडी है। इस विषयके बहुतसे पहलुओंका विचार अभीतक हुआ ही नहीं है और कई बातोंका विचार करनेके साधनभी उपस्थित नहीं हैं । इसलिये इस लेखमें उतना ही लिखा है, कि जितना आज हो सकता है। इस विषयकी जितनी जितनी खोज होती जायगी, उतनी उतनी लेखरूपसे प्रसिद्ध की जायगी । आशा है, कि सब पंडित जन इस अत्यावश्यक और प्रतिदिनके उपयोगी विषयकी खोजमें जाधिकाधिक दत्तचित्त होंगे और इस प्रकार वैदिक धर्मको अमली जीवनमें ढालनेके प्रयोगमें सहायक बनेंगे ।

इन्द्रशक्तिके अभावके कारण आर्य जनतामें परमावधिकी उदासीनता आजकल दिखाई देती है । यह उदासीनता न केवल आर्यत्वसे गिरा रही है, परंतु मनुष्यत्वसे भी गिरा रही है । इस बातका विचार हरएक वैदिक धर्मीको करना सांप्रतमें अत्यावश्यक है ।

केवल वैदिक धर्मका अभिमान किसी प्रकारसे भी हमें उठा नहीं सकता । जबतक हम वेदके उच्च तत्त्वोंको प्रतिदिनके आचरणमें लानेका यत्न न करेगें, तबतक बाह्य अवडंबरोंसे किसीकी भी उन्नति होनेकी किंचित् भी आशा नहीं है ।

इस लिये इस समयका हमारा कर्तव्य निश्चित रीतिसे यह है कि हम अपना वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कर्तव्य जानकर उनको पूर्ण करनेके वैदिक मार्गोंका ज्ञान प्राप्त करके शीघ्रही उन मार्गोंके ऊपरसे आक्रमण करनेका यत्न करें और सफलता प्राप्त करनेतक बीचमें प्रारंभ किये हुए सत्कर्मको

न छोडें।

इंद्रशक्तिके संवर्धनके अनुष्ठानमें भी यही बात है। अनुष्ठान करते करते बीचमेंही स्तब्ध होनेसे जो हानि होती है, उसका वर्णन करना अशक्य है। इसलिये निश्चयके बलसेही अपनी उन्नति करनेके कार्य पूर्णतातक पहुंचाने चाहियें।

इसलिये हे प्रिय पाठकों ! आप इंद्रशक्तिके संवर्धनका प्रयत्न कीजिये और अपने आपको वैदिक धर्मके उज्ज्वल श्रेयके लिये योग्य बनाइये।

इन्द्रशक्तिवर्धक अनुष्ठानका तत्त्व।

ऐतरेय उपनिषदका आशय।

प्रथम अध्याय। वैदिक विकासवाद।

(१) प्रथम खंड।--प्रारंभमें एक ही आत्मा था और आंख हिलानेवाला कुछ भी नहीं था। उसने सोचा कि "मैं लोकोंको रचूं" और उसने इन लोकोंको रचा। द्युलोक और मरनेवाला यह पृथिवी लोक जिसके साथ जल है। पश्चात् उसने लोकपालोंकी उत्पत्ति करनेकी इच्छा से जलोंमेंसे ही एक पुरुषको बनाया और उसे तपाया। जब वह तप गया, तब उसका मुख खुला, जैसा अंडा फटता है, उस मुखसे वाणी और वाणीसे अग्नि। दोनों नासिकाएं खुल गईं, नासिकाओंसे प्राण और प्राणसे वायु। दोनों आंखें खुल गईं, आंखोंसे चक्षु और चक्षुसे सूर्य। कान खुल गये, कानोंसे श्रोत्र और श्रोत्रसे दिशाएं। त्वचा बनी, त्वचासे लोम और लोमोंसे औषधि वनस्पतियें। हृदय बना हृदयसे मन और मनसे चंद्रमा। नाभि खुल गई, नाभिसे अपान और अपानसे मृत्यु। शिस्न बना, शिस्नसे रेत और रेतसे जल बना।

यह ऐतरेय उपनिषद के प्रथम खंडका वर्णन है, इसका तात्पर्य यह है

कि, " एक आत्माकी इच्छा की प्रेरणेसे द्युलोक, अंतरिक्षलोक और भूलोक यह त्रिलोकी बनी। इसमें अंभ, मरीची और जल ये तत्त्व क्रमशः हैं। तत्पश्चात् उसने एक पुरुष बनाया और उसके इंद्रियोंसे बाह्य देवताओं-की निम्न प्रकार उत्पत्ति हुई—

इन्द्रिय	इन्द्रिय-शक्ति	देवता
मुख	वाणी (वचन)	अग्नि
नासिका	प्राण (प्राणन)	वायु
आंख	चक्षु (दर्शन)	सूर्य
कान	श्रोत्र (श्रवण)	दिशा
त्वचा	लोम (स्पर्शन)	औषधि
हृदय	मन (मनन)	चंद्रमा
नाभि	अपान (अपानन)	मृत्यु
शिस्न	रेत (प्रजनन)	जल

इस प्रकार पुरुषके इंद्रियोंके साथ बाह्य देवताओंका संबंध है। इसका स्मरण अच्छी प्रकार रखना चाहिये, क्यों कि आगे इसका विशेष संबंध आनेवाला है।

वैदिक संकोच-वाद।

(२) द्वितीय खंड– ये देवताएं इस प्रकार उत्पन्न होनेके पश्चात् बडे समुद्रमें आ पडीं और उनके पीछे भूख और प्यास लगी। भूख और प्याससे युक्त होकर देवताओंने उस आत्मासे कहा है कि हमारे लिये स्थान दो, जहां बैठकर हम अन्न खाएं। वह आत्मा उन देवताओंके लिये एक बैल ...और पश्चात् घोडा.... लाया। देवताओंने कहा कि " यह हमारे लिये पर्याप्त नहीं है।" पश्चात् वह आत्मा मनुष्य लाया, तब उसको देखकर देवताओंने कहा कि, " यह बहुत अच्छा बना है!! निःसंदेह यह अच्छा बना है!!" इसके पश्चात् आत्माने देवताओंको कहा कि " अपने अपने स्थानमें प्रवेश कर जाओ।" तत्पश्चात्—

अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन् चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्, आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

ऐ. उ. २।१-५

(१) अग्नि वाणी बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, (२) वायु प्राण बनकर नासिकामें घुसा, (३) सूर्य चक्षु बनकर आंखोंमें बसने लगा, (४) दिशाएं श्रोत्र बनकर कानोंमें रहने लगीं, (५) औषधिवनस्पतिएं लोम बनकर त्वचामें आ बसीं, (६) चंद्रमा मन बनकर हृदयमें रहने लगा, (७) मृत्यु अपान बनकर नाभिमें प्रविष्ट हुआ, (८) जल वीर्य बन कर शिश्नमें विराजने लगा।

इस प्रकार देवताओंका अपने योग्य स्थान में निवास होनेके पश्चात् भूख और प्यास इन दोनोंने आत्मासे कहा कि "हमारे लिये भी कुछ आज्ञा होनी चाहिये।" तब आत्माने उनसे कहा कि "मैं इनही देवताओंमें तुम दोनोंको हिस्सेदार बनाता हूं।" इस प्रकार इंद्रियभोगोंमें भूख और प्यास हिस्सेदार बनाये हैं।

यह भाव दूसरे खंडका है। प्रथम खंडमें कहा था, कि पुरुष की इंद्रियशक्तियोंसे अग्नि वायु, सूर्य आदि देव बने हैं। अब इस द्वितीय खंडमें कहा है, कि उक्त अग्नि आदि देवताएं पुरुष के प्रत्येक इंद्रियमें आकर बसी हैं, इसका क्रम यह है-

देवता	इंद्रियशक्ति	निवासस्थान
अग्नि	वाणी	मुख
वायु	प्राण	नासिका
सूर्य	चक्षु	आंख
दिशा	श्रोत्र	कान
औषधि	लोम	त्वचा

चंद्रमा	मन	हृदय
मृत्यु	अपान	नाभि
जल	वीर्य	शिस्न

इस रीतिसे देवताओंने इंद्रियशक्तियों का रूप धारण करके इंद्रियस्थानमें निवास किया है। पूर्व स्थानमें जितनी देवताएं हैं उतनी यहां हैं परंतु पूर्व स्थानमें पुरुषकी इच्छाशक्तिसे इंद्रिय, इंद्रियों में इंद्रियशक्ति और उस इंद्रियशक्तिसे देवता बननेका "विकासवाद" है। वैदिक विकासवाद की किंचित् सी कल्पना यहां हो सकती है। विकास के पश्चात् "संकोच" होना आवश्यकही है। इसलिये द्वितीय खंडमें वैदिक "संकोचवाद" का वर्णन करते हुए यह बताया है कि, विश्वव्यापी विशाल देवताओंने सूक्ष्म रूप धारण करके इस देहमें अवतार लिया। देवताओंने अवतारके लिये बैल, घोडा आदि पशुओंके शरीर अर्थात्, मछली, सूअर, हाथी, घोडा, गाय, बैल आदि प्राणियोंके शरीर पसंद नहीं किये,अथवा इन पाशवी शरीरोंमें उक्त देवताओंके लिये रहनेका आनंद नहीं आया, परंतु जब मनुष्य-शरीर बना, तब उन सब देवताओंको अत्यंत हर्ष हुआ और संपूर्ण देवताओंने अपने अपने अंश भेजकर इस नरदेहमें अवतार लिया और सब देवताएं यहां आकर उक्त स्थानोंमें वसने लगीं।

संकोच और विकासका स्वरूप।

एक वृक्षका बीज होता है, उस बीजमें जड, शाखा, पत्ते, फूल तथा फल आदि वृक्षविस्तारके अंश सूक्ष्मरूपसे रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होतेही, योग्य भूमि, उत्तम जल और खाद मिलते ही, उस बीजका बडा भारी विस्तार होता है। यही उस बीजका विकास है। मानवी वीर्य के शुक्र बिंदुमें मनुष्यके संपूर्ण इंद्रियों और अवयवोंके अंश अति सूक्ष्म रूपसे रहते हैं। माताके सुयोग्य गर्भस्थानमें उनका परिपोष होकर वे ही बीज के अंश विकास प्राप्त करके बढ जाते हैं। इस प्रकार हरएक शक्ति का विकास

होकर परिपूर्ण मानवी देह बन जाता है, यही विकास का क्रम प्रत्येक बीजके विस्तारमें अनुभव होता है। जगत्के अंदर हरएक योनिमें इसके उदाहरण सहस्रों हैं।

बडे वृक्षमें फूल के पश्चात् फल की उत्पत्ति होती है। मनुष्य अथवा अन्य प्राणिकी तारुण्य अवस्थामें प्रजननके उपयोगी वीर्य उत्पन्न होता है। इस फल में और इस बीजमें पिताके संपूर्ण शक्तियोंके अंश रहते हैं। यहां तक ये अंश आते हैं कि, पुत्रके कई अंग, इंद्रिय और अवयव हूबहू पिताके उन अंगों, इंद्रियों और अवयवोंके समान होते हैं। कई मनुष्य तो पिताके सदृश रंग, रूप और आकारमें पूर्ण रूपसे दिखाई देते हैं!! इस बातको देखनेसे पता लग सकता है कि बीजमें पिताके अंश कितने प्रमाणसे आने संभव हैं। यह संकोचका क्रम है और यह हरएक योनिके बीजमें दिखाई देता है। जगत्में सर्वत्र इसके उदाहरण हैं! इस रीतिसे "संकोच और विकास" से यह जगत् चल रहा है।

संकोचमें कितनी शक्ति रहती है, इसका प्रमाण देखनेके कोई साधन हमारे पास इस समय नहीं हैं। बडासे बडा सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी वीर्यबिंदुमें संपूर्ण इंद्रियशक्तियोंको दिखानेमें असमर्थ है, तथापि वीर्यबिंदुमें तथा बीजमें अतिसूक्ष्म रूपसे पिताके संपूर्ण शक्तिसमूह रहते हैं, इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

बीजका विस्तार और विस्तारसे पुनः बीज बननेकी क्रिया इस प्रकार सृष्टिमें सनातन कालसे चल रही है। जो उक्त सत्यता वैयक्तिक बीजके विषयमें सत्य है। वही समष्टिदृष्टिसे भी उसी प्रकार सत्य है, यही सत्य सिद्धांत पूर्वोक्त ऐतरेय उपनिषद्के दो खंडोंमें बताया है।

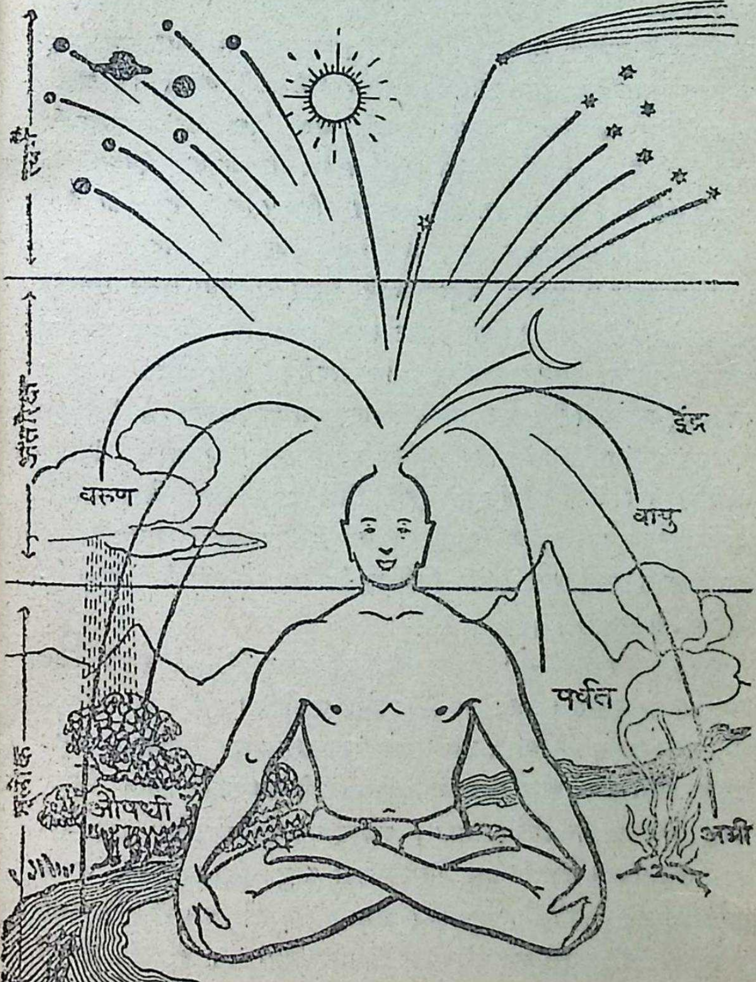
बीजप्रदाता जगत्पिता।

यहां जगत्पिता परमात्मा, व्यापक ब्रह्म, बीजप्रदाता होने से उनकी संपूर्ण शक्तियां अत्यंत सूक्ष्मांश रूपसे प्रत्येक प्राणीके अंदर आती हैं।

विशेषतः विकासक्षम मनुष्ययोनिके प्राणीके अंदर तो अवश्य ही आती हैं। इस अंशरूप शक्तिके अवतारका मननीय वर्णन ऐतरेय उपनिषद् के द्वितीय खंडमें पाठकोंने देखा है ! ! सर्वव्यापक ब्रह्म अथवा एक आत्मा मुख्य है और तेतीस कोटी देव उसके साथी अथवा उसके विश्वव्यापी शरीरके अवयव और अंग हैं। यही परम पिता परमात्मा है। यदि हम उसीके "अमृत पुत्र" हैं तो हमारेमें उसीका वीर्य या बीज है और यदि उसीका बीज हमारेमें है, तो उसी की संपूर्ण शक्तियां हमारे अंदर अति सूक्ष्म अंशरूपसे अवश्य निवास करती हैं। इन शक्तियोंका निवास हमारे शरीरमें कहां होता है, इसका औपनिषदिक वर्णन पूर्व-स्थलमें आचुका ही है।

क्षणभर विषय समझने के लिये मान लीजिये कि परम पिता परमात्मा का यह विश्व ही प्रचंड शरीर है, और उसके आंख सूर्य हैं, और उसके अन्य इंद्रियगण अर्थात् वाणी, श्रोत्र, त्वक्, नासिका, हृदय, नाभि, शिस्न आदि इंद्रियगण क्रमशः अग्नि, दिशा, औषधि, वायु, चंद्रमा, मृत्यु और जल हैं। इसी महावृक्षके फल हम सब मानव हैं, ऐसी कल्पना करतेही पाठकोंके ध्यानमें आ जायगा कि, पिताके गुणधर्म पुत्रमें आनेके नियमके अनुसार परमात्माके आत्मिक बीज के साथ अन्य तेतीस देवताओंके भी अंश हमारे अंदर आते ही हैं। यही उक्त उपनिषद् का कथन है। नाना अलंकारोंसे विविध प्रकारका वर्णन होनेपर भी कथनीय बात एक ही होती है। यह एक स्पष्ट रहस्य की बात है कि हमारे अंदर परमपिता परमात्माकी अंशरूप आत्मिक शक्ति मध्यमें विराज रही है और उसके चारों ओर परमात्माके आश्रयसे रहनेवाले तेतीस देवोंके अथवा तेतीस कोटी देवोंके अंश हैं। इसका अंशावतार किस प्रकार हुआ है, यह ऐतरेय उपनिषद्के शब्दोंमें बताया गया है।

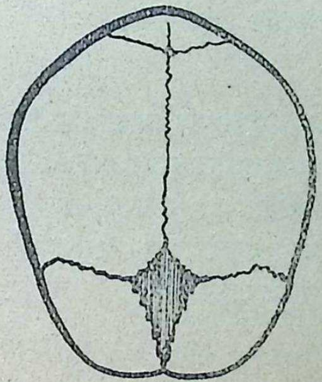
देवोंका अंशावतार। प्रवेशका मार्ग।



संपूर्ण देवोंके अंशावतारका यह चित्र है। इसमें बताया है कि अग्नि, वायु,सूर्य,आदि देवताएं किस रीतिसे हमारे शरीरमें आकर रही हैं। पूर्वोक्त उपनिषद् के वर्णनके साथ इस चित्र की तुलना कीजिये और उपनिषद् का रहस्य जाननेका यत्न कीजिये। वैदिक धर्म का कथन है कि अपने आपको देवतारूप किंवा देवतामय समझो! अब विचार करके पाठक ही देख सकते हैं कि, अपने शरीरका कोई भी अंग और अवयव देवताओं से खाली नहीं है। हरएक अंग और अवयव इंद्रियमें किसी देवताका अंश अवश्य ही है। इस प्रकार यह शरीर सचमुच देवताओंका मंदिर है। इस लिये आवश्यक है, हरएक मनुष्य अपने शरीर को तथा अपने आपको सच्चा देवताओंका मंदिर बनावे और कदापि राक्षसोंका निवासस्थान न बनावे। वैदिक धर्मके उपदेशोंका मनन करनेसे जो बात निःसंदेह ज्ञात होती है, वह यही है। अब इसके पश्चात् प्रश्न हो सकता है, कि इन अंशरूप दैवी शक्तियों का विकास किस प्रकार करना है। इसका विचार करने के पूर्व ये देवताएं इस देहमें किस प्रकार और किस मार्गसे आईं और इनका मुख्याधिष्ठाता कौन है, इसका मनन करना आवश्यक है। यह बात ऐतरेय उपनिषद् के निम्न लिखित खंडों के मनन-से ज्ञात हो सकती है।

(१) तृतीय खंड— " ये लोक और लोकपाल हैं, अब इनके लिये अन्न उत्पन्न करूंगा। उसने जलको तपाया, उससे जो मूर्ति बनी वही अन्न है। वह अन्न भागने लगा, उस समय यह उस अन्न को पकडने लगा। उसने वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, शिस्न से पकडनेका यत्न किया, परंतु इनसे अन्न पकडा नहीं गया। पश्चात् अपानसे पकडनेका यत्न किया तो उससे पकडा गया। इस लिये यही वायु (अन्न-ग्रहः) अन्नको पकडनेवाला है, इसी लिये इसको (अन्नायु) अन्नसे आयुकी वृद्धि करने-वाला कहते हैं। उस आत्माने सोचा कि मेरे विना यह देह कैसे रहेगा? ऐसा विचार करके उसने अंदर प्रवेश करने का विचार किया।... तब

उसने इस सीमाका विदारण करके अंदर प्रवेश किया। यही द्वार 'विद्दति' नामक है, और यही (नान्दनं) नंदनवन है, अर्थात् यही परम आनंदका स्थान है। इस आत्माके तीन स्थान हैं। आंख, कण्ठ और हृदय। यहां यह रहता है। जब वह जन्मा, तब उसने सब भूतों पर दृष्टि डाली, उसने फैले हुए ब्रह्मको देखा और कहा कि मैंने यह देख लिया। इसका नाम " इदं-द्र " है। परंतु गुह्यता के कारण इसीको " इंद्र " कहते हैं॥ "
(ऐ. उ. अ. १।३)



सिरमें विद्दति द्वार।

इस तृतीय खंडमें आत्माके शरीरमें प्रवेशके मार्गका वर्णन है। सिरमें विद्दति नामक द्वार है। इस मार्गसे इसका प्रवेश शरीरमें हो गया है। यही " नंदनवन " है, स्वर्ग कैलास आदि इसीके नाम हैं। स्वर्गीय उद्यानसे जो इसका अधःपात हुआ है, वह यहांसे ही है। यहांसे उसके अधःपातका मार्ग कंठ, हृदय और आंख हैं। इस विद्दति द्वार से अंदर प्रविष्ट होकर पृष्ठवंशके मार्गसे सीधा नीचे उतर कर यह मूलाधार चक्रमें आता है, वहांसे अज्ञात मार्गसे नाभी में

पहुंच कर हृदयमें आता है वहां की ऊर्ध्व नाडीसे मस्तिष्क में चढकर आंखमें वसता है और वहांसे जगत् का निरीक्षण करता है और अन्य अनुभव लेता है। विदारण करके अंदर घुसता है, इस लिये इसको(इन्-द्र) इंद्र कहते हैं। यही अन्नादिका भोग करता है। इतना वर्णन देखनेके पश्चात् इसी उपनिषद्का निम्न भाग देखिये-

गर्भ-प्रकरण।

(ऐ. उ० अध्याय २) खंड प्रथममें निम्न लिखित वाक्य अपने प्रचलित विषय के लिये अत्यंत उपयोगी हैं। उसलिये उनका अब विचार करते हैं-

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः। तदेतत्सर्वेभ्योऽगेभ्यस्तेजःसंभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति। तद्यदा स्त्रियां सिचत्यथैनज्जनयति। तदस्य प्रथमं जन्म। तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमंगं तथा...। तं स्त्री गर्भं बिभर्ति। ...तदस्य द्वितीयं जन्म॥ ऐ. उ. अ. २।१

"(यत् रेतः) जो यह रेत-वीर्य- है, वही (पुरुषे गर्भः) पहिले पुरुष में गर्भ होता है, (तत् एतत्) वह यह वीर्य (सर्वेभ्यः अंगेभ्यः) सब अंगोंसे (संभूतं तेजः) इकट्ठा हुआ तेज ही है। वह (आत्मनि एव आत्मना) अपने अंदर ही अपने आपको (बिभर्ति) धारण करता है। जब (तत्) वह रेत स्त्रीमें सिंचन किया जाता है, तब (अस्य प्रथमं जन्म) इसका पहिला जन्म होता है। पश्चात् वह वीर्य (स्त्रिया आत्मभूयं) स्त्रीके शरीरके साथ अपनासा- अपने अंग जैसा-बन जाता है।...... उस गर्भका स्त्री धारण पोषण करती है।...... पश्चात् प्रसूत होती है, वह उसका दूसरा जन्म है॥"

संपूर्ण अंगोंका तेज ।

इसमें वीर्यका वर्णन किया है । हरएक अंगमें एक प्रकार का तेज होता है, उस प्रत्येक अंगके तेज का अल्प अंश इकट्ठा होकर जो सारभूत तत्त्व बनता है, वही वीर्य का बिंदु है। अर्थात् इस वीर्यबिंदुमें हरएक अवयव, अंग और इंद्रियका साररूप तेज है, इसीलिये इस वीर्यबिंदुके विकास से पिताके समान देह बन जाता है। इस कारण इस देहका पहिला जन्म पिताके देहसे जो वीर्य मातृगर्भाशय में जाता है उस समय होता है और दूसरा जन्म माताके गर्भाशयसे बाहिर आनेके समय होता है ।

माताके देह में जो शरीर बनता है, उस देहमें आत्माका प्रवेश शिर स्थानीय "विद्दति" द्वार से होता है। इस आत्मा के साथही साथमें अन्य देवताएं भी आकर स्वकीय नियत स्थानमें विराजती हैं। इस बातका विचार इससे पूर्व हो चुका है। इस प्रकार पाठक भी ऐतरेय उपनिषद् के पूर्व खंडोंके कथन के साथ इस खंडके कथन की तुलना करते जांय और इस रहस्य बातका अनुभव अपने अंदर करते जांय। यही अनुष्ठान का तत्त्व है। अब इस आत्माकी मुक्तता होनेका विचार निम्न प्रकार अग्रिम खंडमें किया है –

आत्माकी मुक्ति ।

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे, कतरः स आत्मा ? येन वा पश्यति, येन वा शृणोति, येन वा गंधानाजिघ्रति, येन वा वाचं व्याकरोति; येन वा स्वादु चाऽस्वादु च विजानाति, यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् संज्ञानमाज्ञानं, विज्ञानं, प्रज्ञानं, मेधा, दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा, जूतिः, स्मृतिः संकल्पः, क्रतुरसुः, कामो, वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवंति। एष ब्रह्मैष इन्द्र, एष प्रजापतिरेते

सर्वे देवाः ... सर्वं प्रज्ञानेत्रं, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं, प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा, प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ स एतेन प्राज्ञेनात्मनाऽस्मा-ल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् त्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् ॥ ऐ० उ० अ० २।२

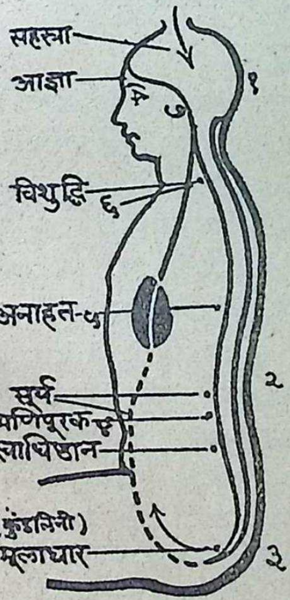
" यह कौन है जिसकी हम आत्माके नामसे उपासना करते हैं? कौनसा वह आत्मा है? जिससे देखता है, सुनता है, सूंघता है, वाणीका उच्चार करता है, स्वादु को जानता है, स्वादु तथा अस्वादु को जानता है, यह हृदय और यह मन, संज्ञान, (आज्ञान) आज्ञा, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, (जूति) वेग, स्मृति, संकल्प, क्रतु, (असु) प्राण, काम और (वश) स्वाधीनता ये सब ही प्रज्ञान के नाम हैं। यह ब्रह्मा, यह इंद्र, यह प्रजापति ये सब देव हैं... यह सब प्रज्ञाके नेत्र से युक्त हैं। यह प्रज्ञानपर ही ठहरा है, सारा लोक प्रज्ञानेत्रवाला है, प्रज्ञान पर ठहरा है, प्रज्ञान ब्रह्म है। वह प्राज्ञ आत्माके द्वारा इस लोकसे ऊपर चढकर उस स्वर्गमें सारी कामनाओंको पाकर अमर हो गया। "

इसमें प्रारंभमें आत्माका स्वरूप बताकर अमर होनेका मार्ग बताया है। जिसकी शक्ति से दिखाई देता है, सुनाई देता है तथा अन्य कार्य किये जाते हैं, वह आत्मा है। इसीका चित् स्वरूप है, इसलिये यही ज्ञान-वाला अतएव " प्रज्ञान " है। संज्ञान आदि इसीके नाम हैं। यही ब्रह्मा, इंद्र, प्रजापति आदि नामसे वेदमें प्रसिद्ध है। यह जान कर प्रज्ञानरूप आत्मासे इस लोक से ऊपर उठकर, उस स्वर्गलोकमें सब इच्छाओंकी तृप्ति करके अमर होना चाहिये, यह उक्त उपनिषद् का तात्पर्य है।

अब देखना चाहिये, कि इस उपनिषद्वाक्य का भावार्थ क्या है। जिसकी शक्तिसे आंख देखता है, कान सुनता है, वह आत्मा है इस विषयमें कोई शंका नहीं; सर्वत्र उपनिषदोंमें यही कहा है। विशेषकर केन उपनिषद् के प्रथम खंड में यही विषय स्पष्ट हुआ है। अतः आत्माका स्वरूप इस

प्रकार ज्ञात हुआ और उसकी शक्ति की भी कल्पना हुई। अब बात रही कि, इस आत्माको (१) ऊपर उठाना, (२) स्वर्गधाममें पहुंचाना और (३) अमर करना, किस रीतिसे हो सकता है? किस प्रकार यह ऊपर उठाया जा सकता है, किस रीतिसे स्वर्गमें पहुंचता है और किस रीतिसे अमर होता है, यह विचार करना है। इस विचारके लिये इसके आनेके मार्गका विचार अवश्य करना चाहिये।

विदृति द्वार।



नंदनवन।

इसी लेखमें बताया ही है कि संपूर्ण देवोंके अंशोंके साथ यह आत्मा इस शरीरके अंदर 'विदृति' द्वारसे आ गया है। इस द्वारसे अंदर आकर मस्तिष्कमें रहा है। शरीरमें गुदासे नाभितकका प्रदेश भूलोक, बीचका प्रदेश अंतरिक्षलोक और हृदयसे ऊपर का मस्तिष्क प्रदेश स्वर्गधाम है। अतः पूर्वोक्त विदृति द्वार से अंदर प्रविष्ट होते ही यह स्वर्ग के उद्यानमें रहता है इसीका नाम पूर्वोक्त उपनिषद् वाक्यमें 'नांदन' कहा है, यही नंदनवन है। स्वर्ग, बहिश्त, नंदनवन आदि सभी नाम इसी स्थान के हैं। यहां ही कल्पना का "कल्प-वृक्ष" है और कामना पूर्ण करनेवाली "काम-धेनु" है। पूर्वोक्त उपनिषद्वचन में इस बातके सूचक "संकल्प तथा काम" शब्द अवश्य देखिये। इस प्रकार यह इस "नवद्वार पुरी" का सम्राट् आत्माराम इस नंदनवनमें विराजता है।

यह स्थान अत्यंत प्रकाशपूर्ण है, जिस प्रकाश का सादृश्य जगत् में कोई भी पदार्थ नहीं बता सकता। यहां से यह आत्माराम नीचे उतरने लगता है। सीढी इसके लिये तैयार रहती है, यही पृष्ठवंशका मार्ग है। अथवा स्वर्नदी के प्रवाह से यह नीचे उतरने लगता है। दोनों का भाव एक ही है, क्यों कि पृष्ठवंश के अंदर से आनेवाले मज्जाप्रवाह का नाम सुषुम्ना, स्वर्नदी, स्वर्गंगा आदि है और पृष्ठवंशमें अनेक ग्रंथियां हैं, उनको ही संकेतसे पाडीयां भी कहते हैं। इस स्थान से उतरनेके समय मस्तिष्कसे नीचे कंठमें प्रथम आता है और वहांसे नीचे उतरनेका प्रारंभ होता है।

चक्रव्यूहमें प्रवेश ।

उतरना आसान है, गिरना सुगम है, पतन विनायत्न हो जाता है, इस प्रकार इसका नीचे आना भी आसानीसे हो जाता है। उपनिषदमें कण्ठ, हृदय और नेत्र ये तीन स्थान इसके बताये हैं। "विदृति" द्वार से यह उक्त मार्ग से कण्ठमें आता है और वहांसे और नीचे उतरता है। स्वर्गधामसे "बाबा आदम" का पतन होने लगता है, इस समय प्रत्येक निचली सीढीपर उसको अनुभव होता है कि "मैं अधिक प्रकाश के स्थान से न्यून प्रकाशके स्थानमें जा रहा हूं।" परंतु अब उस बिचारे के आधीन नहीं रहा, कि फिर लौटना। क्यों कि "चक्रव्यूह में प्रवेश करना और वहां युद्ध करना अभिमन्यु जानता था, परंतु चक्रव्यूह से वापस लौट आना अभिमन्युसे नहीं हुआ। इस लिये वह उसी चक्रव्यूहमें मारा गया!!! चक्रव्यूह में जाना, वहां युद्ध करना और विजय प्राप्त करके फिर उसी मार्ग से वापस आना, यह बड़ा बिकट कार्य केवल एक ही वीर विजय अर्जुन ही जानता था।" इस महाभारतीय कथाका स्मरण यहां पाठक अवश्य रखें, क्यों कि प्रचलित विषयमें हमारा आत्मा भी इस शरीर रूपी अष्टचक्रोंसे युक्त चक्रव्यूहमें घुस रहा है और देखना है कि, इसका आगे जाकर क्या बनता है।

प्रत्येक सीढीपर नीचे उतरते ही इसको अनुभव हो रहा है कि पूर्व के समान वहां प्रकाश और ज्योति नहीं है। इस का अनुभव करता हुआ, यह वीर नीचे उतरता है। इस विचार से नीचे उतरता है कि, आगे क्या है यह देखेंगे। इसको आशा होती है कि, आगे इससे भी अधिक उत्तम अवस्था प्राप्त होगी!!!

परंतु यह स्वर्गसे गिरा है, इसको अब आसानी से स्वर्गधाम कैसा मिलेगा? स्वर्गसे भ्रष्ट होते ही स्वर्गका द्वार बंद किया गया है, और जैसा जैसा यह आगे बढता है, वैसे वैसे ऊपर जानेके किवाड बंद हो रहे हैं, इसका इसको पता नहीं!!! अंतमें आकर यह इस चक्रव्यूहमें फँसता हुआ मूलाधार चक्रमें प्राप्त होता है। वहां मूल शक्ति भुजंगी पार्वती दुर्गा देवी ईश्वरी उमासे मिलता है और उसके सौंदर्य से उसके आधीन हो जाता है। इतनेमें वह भगवती देवी ऊपर जानेका द्वार बंद करती है। यहां इसका प्रकाश का मार्ग बंद होता है।

जो प्रकाश ऊपरसे अर्थात् शीर्षस्थानीय ब्रह्मलोकसे आता है, वह एक एक किवाड बंद होनेसे कारण न्यून न्यून ही होता जाता है और मूलाधार चक्रका किवाड बंद होते ही वह अंधकारमय आकाशमें प्राप्त होता है। इसी अंधेरे आकाशमें वापस जानेके समय इसी पराभूत "इंद्र को उमा देवीका दर्शन" होनेका वर्णन केन उपनिषद् में है। परंतु वह वापस जानेके समय का वर्णन है। उक्त बात का अनुसंधान करनेसे पाठकोंको केनोपनिषद् के कथन की भी सत्यता ज्ञात हो सकती है। अस्तु।

इस मार्ग– अर्थात् यहां के अज्ञात मार्गसे वह नाभिस्थानमें पहुंचता है और हृदयमें नाभिसे ऊपर चढ कर आता है। ऐतरेय उपनिषद्में इसका जो हृदयस्थान बताया है, वह यहां उसको प्राप्त होता है। यहांसे जो नाडी ऊपर मस्तिष्क तक जाती है, उसके द्वारा वह मस्तिष्कमें फिर जाता है और वहां नेत्रमें रहकर बाहिर की सृष्टिको देखता है, नासिकासे

आकर सुगंध लेता है, मुखमें आकर जिह्वासे स्वाद लेता है, कानमें आकर शब्द सुनता है, इस प्रकार यह दुनयवी मौजें करने लग जाता है! मस्तिष्क के जिस प्रदेशमें अब यह रहता है, वह उसका कैदखाना है। पाठक यहां स्मरण रखें कि मस्तिष्कमें जो इसका स्वर्गधाम था, वह इसके लिये अब बंद हुआ है। यद्यपि इस समय यह मस्तिष्कमें आया है तथापि पांचों पशुओंके आधीन होनेके कारण गुलामीकी अवस्थामें यह यहां रहता है!!! जिस समय यह अब आये हुए मार्ग से वापस जायगा और अपने प्रयत्नसे सब द्वारों को खोलकर स्वतंत्रतासे अपने पूर्व अनुभूत स्वर्गधाम में पहुंचेगा और स्वकीय इच्छासे वहां इसका आना जाना संभव होगा, तब ही इसको " स्व-तंत्र " अर्थात् बंधनसे निवृत्त अत एव मुक्त कहना संभव होगा। नीचे गिरनेका यह फल है। गिरना आसान है, परंतु उठना कठिन है?

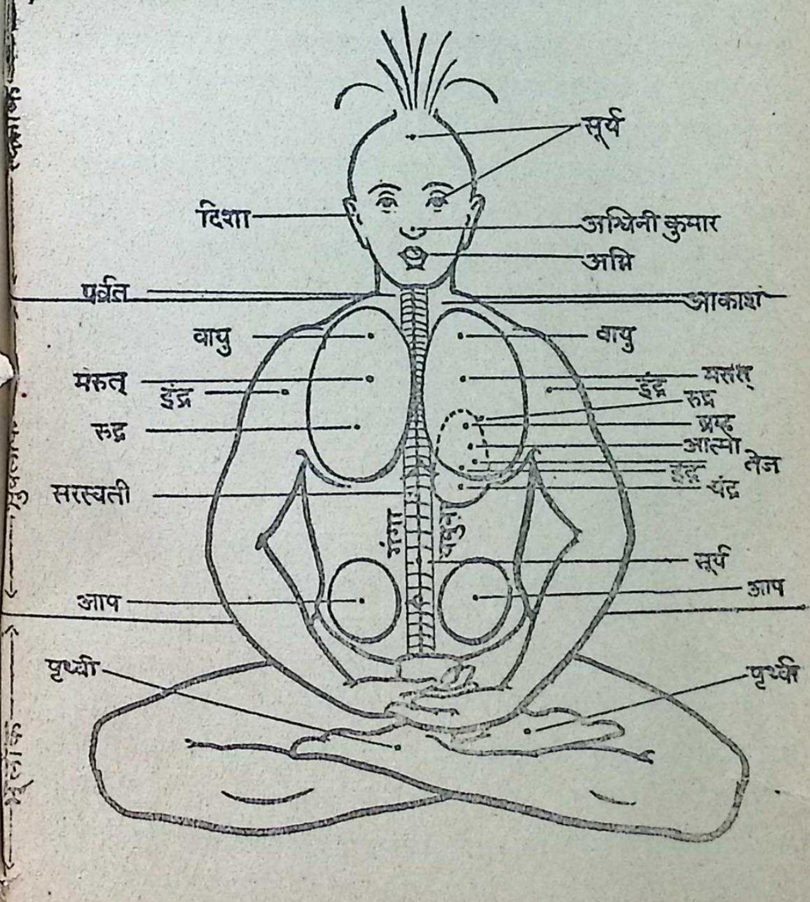
पुरुषार्थका अवसर।

गिरना निःसंदेह बुरा है, परंतु गिर जानेसे ही ऊपरली अवस्था का मूल्य जाना जाता है। परतंत्रता में आने से ही 'स्वातंत्र्य' की श्रेष्ठताका पता लगता है, गुलामीसे ही स्वाधीनताके सुख का महत्त्व है। अथवा यों कहिये कि गिरने की संभावनाके पश्चात् ही उठनेका पुरुषार्थ होता है, परतंत्र अवस्थानमें स्वाधीनता की प्राप्तिके परम पुरुषार्थ किये जाते हैं। तथा जो स्वाधीनताके लिये पुरुषार्थ करते हैं, उनका यश बढता है। सब लोग इन महात्माओं की प्रशंसा करने लगते हैं। यदि गुलामी, पराधीनता अथवा पतित अवस्था ही न होगी, तो पुरुषार्थीयोंके लिये यशःप्राप्ति किससे होगी? इसलिये सच्चे महात्मा लोग प्राप्त कठिनता से डरते नहीं, गुलामीमें रोते नहीं रहते, परंतु पुरुषार्थ करके ऊपर उठते हैं और दूसरों को उठाते हैं।

अतः अपने आत्माकी इस पराधीन अवस्थाके कारण दुःख करते बैठने का अवसर नहीं है। परंतु जो अवस्था प्राप्त हुई है उस से उन्नत होनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। सदा पुरुषार्थ करनेका उत्साह धारण करके उद्यत

होना चाहिये, अपने से जितना हो सकता है, उतना परम पुरुषार्थ करके, अपनी उन्नति साध्य करनी चाहिये। इसका विचार करनेके पूर्व अपनी अवस्थाका यहां थोडासा विचार करना है-

शरीरमें देवताओंका निवास।



ऐतरेय उपनिषद् तथा अन्य उपनिषद्, तथा वेदमंत्र और ब्राह्मण-वाक्योंके उपदेशसे जो देवताओं के स्थान का निश्चय होता है, वह इस चित्रमें बताया है। इस चित्रमें देखकर अपने देहमें- इस नवद्वारयुक्त अयोध्या नगरीमें- इस द्वारवतीमें- कहां कौनसी देवता निवास करती है, इसका पता लग सकता है। इस देहमें तीनों लोक कहां हैं, यह भी इसी चित्रमें देखिये। तथा विशाल जगत्का छोटासा चित्र अपने अंदर ही जाननेका यत्न कीजिये। अनुष्ठानका तत्त्व समझने के लिये इस अनुभव की अत्यंत आवश्यकता है।

जगत् के अंदर परम पिता है और इस देहमें आपका आत्मा है। जगत्में अग्नि, वायु, रवि आदि तैंतीस देवताएं हैं, आपके देहमें भी उनके तेतीस अंश आकर रहे हैं, अर्थात् आपके देहमें अंशरूप तेतीस देवताएं निवास कर रहीं हैं। इस सब बीजरूप दैवी शक्तियों का तथा अपनी आत्म-शक्तिका भी यथोचित विकास करना इस समय आपका "परम धर्म" है।

इस चित्रमें थोडीसी देवताएं बताईं हैं, परंतु वहां सब तेतीस देवता-ओंकी कल्पना करनी चाहिये। क्यों कि यह शरीर त्रिलोकी की छोटीसी प्रतिमा है। इसलिये त्रिलोकीमें जितनी देवताएं हैं, इनके सब प्रतिनिधि अंशरूपसे इसमें आगये ही हैं।

यह "प्रतिनिधि राज्यशासन संस्था" है, इसका यहां अनुभव कीजिये। मानवी संस्थाओंमें प्रतिनिधि चुननेका अधिकार कइयोंको होता है और कइयोंको नहीं होता। उस प्रकार का बहिष्कार इस आध्यात्मिक प्रातिनि-धिक संस्थामें नहीं है। वेदके द्वारा इस प्रकारके प्रातिनिधिक राज्यशासन संस्थाका उपदेश ऋषियोंको प्राप्त हुआ था, जिसमें सब के प्रतिनिधि चुने जानेका ही उपदेश प्रधान स्थान रखता था। काला, गोरा, पीला, लाल अथवा गन्दमी रंगके कारण किसी प्रकारका भेदभाव यहां उत्पन्न होनेकी संभावनाही नहीं है!! वैदिक आदर्शकी उच्चता यहां पाठक अनुभवमें देख सकते हैं। यदि इस समय वैदिक धर्मियोंके अंदर भेदभाव आया है,

तो वह वैदिक धर्म की जागृति न होनेके कारण ही है। अस्तु। इस प्रकारके कई बोध पाठकोंको यहां मिल सकते हैं।

अपनी आत्मशक्तिका ध्यान।

उक्त प्रकार अपने देहको विशाल जगत् की छोटीसी प्रतिमा और अपने आपको परमात्माके अमृत बीजसे युक्त " अमृत - पुत्र " समझिये। इसी बातका ध्यान कीजिये और कभी यह भाव अपने मनसे हटने न दें। इसीमें आत्मशक्ति की जागृति है, अपने आपको " अमृत- पुत्र " अनुभव करनेका यही एक " वैदिक- मार्ग " है। इस बातसे निम्न लिखित मंत्रों का अनुभव आप कर सकते हैं-

> इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ
> त्रयश्च त्रिंशच्च। मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ ऋ. ८।३०।२

" इस प्रकार (मनोः देवाः) मनुष्यके अंदरके देव हैं जो (यज्ञियासः) पूजनीय तथा (रिशादसः) बुराईका नाश करनेवाले (त्रयः- त्रिंशत्) तेतिस देव हैं। " यह इस मंत्रका तात्पर्य देखने और विचार करने योग्य है। ये तैंतीस देव (मनोः देवाः) मनुष्यके अंदर हैं, जैसा कि पूर्वोक्त चित्रमें बताया है। उस चित्रमें वास्तवमें संपूर्ण देवताओंका स्थाननिर्देश करना आवश्यक है, तथापि स्थान अल्प होनेके कारण सबको चित्रित करना कठिन हुआ। परंतु पाठक इस रीतिसे अन्य देवताओंकी कल्पना कर सकते हैं। इस प्रकार अपने अपको देवतामय अनुभव करने के पश्चात् निम्न लिखित मंत्रोंका अर्थ स्पष्ट हो सकता है-

> ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामेकादश स्थ।
> अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ॥ ऋ० १-१३९-११ य० ७-१९

" पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यु लोकमें अर्थात् त्रिलोकीमें- प्रत्येकमें ग्यारह सब मिलकर- तैंतीस देव हैं। " यह वर्णन अध्यात्मपक्षमें अपने अंदर भी पूर्वोक्त प्रकार देखा जाता है। इसी प्रकार-

ये देवा दिव्येकादश स्थ० ॥ ११ ॥
ये देवा अंतरिक्ष एकादश स्थ० ॥ १२ ॥
ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ० ॥ १३ ॥ अथर्व १९।२७

त्रिलोकीके साथ तेतीस देव जिनका वर्णन इस प्रकार के सैंकडों मंत्रोंमें हुआ है. उनका अपने अंदर अनुभव इसी रीति से होता है और यह अनुभव करना वेदको अभीष्ट है। पाठक देख सकते हैं कि वेदका उपदेश अनुभवमें आनेसे अपनी शक्ति का पता लगता है। जो मनुष्य अपने आप को हीन और दीन समझता था, यदि उसको वेदका ज्ञानामृत पिलाया जाय, तो उसकी हीन वृत्ति लोप हो जायगी और वह अपूर्व आत्मिक बलसे युक्त होगा।

अपने अंदर तैतीस देवताओंका अनुभव।

इतना विवेचन देखनेके पश्चात् अब निम्न मंत्र देखिये

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः ॥ १३ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ॥ २३ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ॥
तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥ अ. १०।७

“ जिसके अंगमें सब तेतीस देव रहे हैं। जिसका खजाना तेतीस देव संरक्षित रखते हैं। जिसके अंगके गात्रोंमें ततीस देव रहे हैं। उन तेतीस देवोंको अकेले ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। ”

यह वर्णन परमात्मा परक होते हुए भी उसके अमृत पुत्र में किस प्रकार घट सकता है, यह बात अब स्पष्ट हो गई है। इसीलिये वेदमें कहा है, कि–

ये पुरुष ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ॥ अ० १०।७।१७

" जो इस पुरुषके देहमें ब्रह्मको देखता है, वही परमेष्ठी प्रजापतिको जानता है। " परमात्मा की कल्पना ठीक प्रकार होने के लिये अपने अंदर वेद मंत्रोक्त उपदेशका अनुभव आना आवश्यक है। उस अनुभवको प्राप्त करने की रीति इस लेखमें बताई है। अब ऐतरेय उपनिषद् के वचन का अपने अंदर अनुभव देखने के लिये निम्न लिखित वेदमंत्र देखिये–

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे । अ० ११।८।३१

" सूर्य चक्षु बनकर तथा वायु प्राण बनकर इस पुरुष की सेवा कर रहे हैं। " तथा–

सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
रेतः कृत्वा आज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
शरीरं ब्रह्म प्राविशत् ॥ ३० ॥ अ. ११।८

" सब मर्त्य को भिगोकर देव पुरुषमें घुसे हैं ॥ मर्त्य घर बना कर देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ वीर्य का घी बना कर देव पुरुषमें आगये हैं ॥ शरीरमें ब्रह्म प्रविष्ट हुआ है ॥ "

इन मंत्रोंमें " मर्त्यं, गृहं " ये शब्द इस शरीरके वाचक हैं, "पुरुष" शब्द मनुष्यवाचक हैं। " रेत का घी बनाकर देव इस पुरुषमें घुसे हैं, " इस मंत्रभागमें तो स्पष्ट है कि, रेतसे बननेवाले रजवीर्यसे उत्पन्न होनेवाले– इस देहमें सब देव आकर रहे हैं। इसीलिये निम्न मंत्रमें कहा है–

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥ अ० ११।८

" इस लिये (पुरुषं विद्वान्) इस पुरुषको यथावत् जाननेवाला ज्ञानी इसको (इदं ब्रह्म) यह ब्रह्म अर्थात् यह बडा शक्तिशाली है, ऐसा (मन्यते) मानता है, (हि) क्यों कि (सर्वाः देवताः) सब देवताएं इसमें (गावः गोष्ठे इव) गौवें गोशालामें इकट्ठी रहनेके समान रहती हैं।

❀

मनुष्य के देहके अंदर अर्थात् जीवित देहके अंदर सब देवताएं रहती हैं और उनका मुख्य अधिष्ठाता आत्मा है, यह बात इस प्रकार वेद मंत्रों के प्रमाणों से स्पष्ट हो गई है। अपनी आत्मिक उन्नति करने के विचार में इस ज्ञान की बडी ही उपयोगिता है। उपनिषदों के रहस्य का विचार करनेके समय इसप्रकार वेद मंत्रोंकी सहायता होती है। वास्तवमें देखा जाय तो वेद मंत्रोंका आशय लेकर ही उपनिषदोंकी रचना हुई है। इसलिये हरएक उपनिषद् के प्रत्येक कथन का विचार करने के समय वेद मंत्रोंकी संगति लगाकर ही देखना चाहिये और दोनोंकी संगतिसे ही अर्थका निश्चय करना चाहिये। अस्तु। यहां हमने देखा, कि अपने शरीर में शक्तियोंका निवास है, यह ज्ञान प्राप्त होनेसे किस प्रकार अपनी योग्यता ठीक ठीक ज्ञात हो सकती है। इतना ज्ञान होनेके पश्चात् अपनी उन्नतिका मार्ग अतीव सुगम हो जाता है।

उन्नतिका उपाय।

शक्तियां बीजरूपसे अपने अंदर हैं, इतना केवल ज्ञात होने से सिद्धि नहीं मिल सकती, सिद्धिके लिये अनुष्ठान अत्यावश्यक है। इस की रूपरेखा अब थोडीसी बतानी है।

बंधनमें पडा हुआ आत्मा मस्तिष्कमें बैठता है और जागृतिके व्यवहार करता है, तथा विश्राम लेने के लिये हृदय में आता है। आत्मा का मस्तिष्कमें निवास "प्रवृत्ति" का दर्शक है और हृदयमें निवास निवृत्तिका सूचक है। मस्तिष्कसे हृदयमें आना भी इस विचारके आधीन नहीं है। शरीर थक जानेसे इसको परवश होकर हृदयमें आना ही पडता है। इसका मस्तिष्कमें निवास जागृति बताता है और सुषुप्तिमें यह हृदयमें आता है। जिस समय यह स्वशक्तिसे हृदयमें उतरेगा, उसी समय उसको समाधि सिद्ध होगी। स्थान वही है, परंतु स्वाधीनतासे वहां पहुंचनेपर समाधि और परवश होकर पहुंचनेसे

निद्रा, इतना भेद हो जाता है। देखिये स्वाधीनता और पराधानितामें कितनी भिन्नता है !!!

मस्तिष्कमें रहता हुआ यह आत्मा पंचज्ञानेंद्रियोंसे मिलकर नाना भोग भोगता है और मौजे उडाता है ! परंतु इन मौजोंमें उसको वह आनंद नहीं मिलता, कि जो वह चाहता है। इन इंद्रियोंके साथ उसकी वृत्ति सदा चंचल रहती है, कभी यह सुगंध लेता है, कभी शब्द सुनता है और कभी रूप देखने लग जाता है ! हरएक इंद्रियके साथ भला और कभी बुरा भाव भी लगा ही होता है। इस प्रकार वृत्तिकी चंचलता होनेके कारण इसको क्षणमात्र भी आराम नहीं मिलता, इसलिये इस समय इसको दो उपाय करने चाहियें-

(१) सबसे प्रथम बुरे भावोंसे मनको हटाना और केवल अच्छे भावों और अच्छे कर्मोंमें ही उसको लगाना।

इतना होनेसे आधा झंझट इसके पीछेसे हट जाता है वेदमें—

" भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम। " (ऋ० १- ८९ -८)

" कान आदि इंद्रियोंसे हम सदा अच्छी बातें सुनें। " यह उपदेश तथा इसप्रकार का अन्य उपदेश इस मार्ग का द्योतक है। इसके पश्चात्-

(२) मनको एक ही सद्विषयमें लीन करके एकाग्र करना।

इससे चित्तकी सब व्यग्रता दूर होती है और जितनी एकाग्रता सिद्ध होती जायगी, उतना उसको आत्मशक्तिका अनुभव होने लगेगा। व्यग्रता की अवस्थामें जो अपने आपको अत्यंत निर्बल समझता था, वही अब एकाग्रताकी सिद्धि मिलनेके बाद अपने आपको " शक्तिका केंद्र " अनुभव करने लग जाता है !!! प्रकाशके मार्गका आक्रमण प्रारंभ होते ही यही अपूर्व लाभ उसको होता है। इसको प्रकाशका मार्ग इसलिये कहते हैं कि

इसमें " प्रकाश दर्शन " स्पष्ट रूपसे होता है। एकाग्रता सिद्ध होनेके पश्चात् प्रकाशदर्शन तथा अन्य अनुभव भी होने लगते हैं।

एकाग्रताका अभ्यास सिद्ध होते ही यह अपनी स्वाधीनतासे हृदय में उतर सकता है और वहांके अनुभव ले सकता है। हृदयस्थानमें जो प्रकाशपूर्ण स्वर्गधाम है वह इस समय दिखाई देता है. इसका वर्णन वेदमें निम्न प्रकार आता है–

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ अ. १०।२।६१

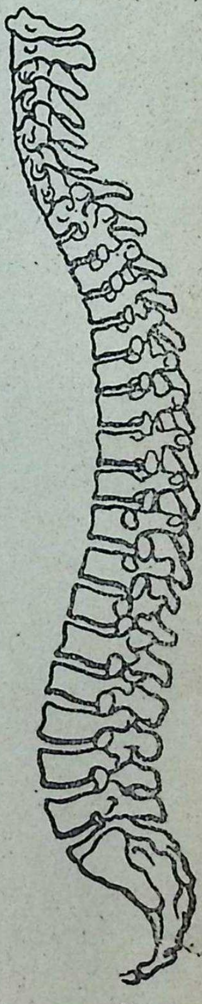
" आठ चक्र और नौ द्वारों वाली यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, उसमें सुवर्णमय कोश तेजसे परिपूर्ण स्वर्ग ही है। " इसी हृदयाकाशमें वह पहुंचता है और उसको तेज का अनुभव मिलता है।

प्रकाशका मार्ग।

आगे प्रकाशके मार्ग में ही अपने आपको रखना चाहिये। अर्थात् अपनी चित्तकी स्थिरता उसी प्रकाशमें करनी चाहिये जिससे आगेका पथ स्वयं विदित हो जाता है। सदा प्रकाशमें यह रहता है, इसलिये इस मार्गको " अर्चिरादि मार्ग " अर्थात् प्रकाशादि मार्ग कहते हैं। इसी प्रकाशमें चित्त की स्थिरता करने और दूसरे किसीमें ध्यान न देनेसे यह आये हुए मार्गसे फिर हृदयसे नाभिमें उतर कर वहांसे मूलाधार चक्रमें पहुंचता है यहां इसको उमा देवीका दर्शन होता है और वह सुषुम्ना मार्गसे ऊपर चढने लगता है। इस पर्वतारोहणसे कैलास शिखर पर पहुंचता है। इस समय इसको इतनी शक्ति आती है, कि जिस समय चाहे वह पूर्वोक्त " विद्रितिद्वार "से अर्थात् सिरको फाड कर बाहिर निकलता है, इस समय बडा आवाज भी होता है। सब शरीर स्वाधीन करके योगसे तनुका त्याग करना इसीको कहते हैं–

पृष्ठवंश ।

(पर्व-वान्=पर्वत)



आजकल संन्यासियों की परंपरामें इस का प्रतिनिधिभूत एक उपाय करते हैं, वह यह है, कि जिस समय संन्यासी मरने लगता है अथवा जिस समय उसका प्राण चला जाता है, उस समय "शंख से उसका सिर फाड देते हैं।" और समझते हैं, कि ऐसा करने से वह मुक्त हुआ !! परंतु यह मूल बातका उपहास मात्र है !!! अपनी शक्तिसे विदातिद्वार खोलकर बाहिर जाना और बात है, तथा दूसरोंने शंख से मस्तक तोडना और बात है। अस्तु इस प्रकार यह प्रकाशके मार्ग का महत्त्व है। सब तत्त्वज्ञानके ग्रंथोंमें कहा है कि इस मार्गसे उक्त प्रकार जानेवालों को पुनर्जन्म नहीं होता। अस्तु।

यहां एक पृष्ठवंशका चित्र दिया है। इसीको "पर्वत" कहते हैं, क्यों कि इसमें "पर्व" होते हैं। जिस प्रकार बांसमें पर्व होते हैं, इसी प्रकार इसमें हैं। "पर्व" होने के कारण ही इसका "(पर्व-वत्) पर्वत" कहते हैं। इसीमें अनेक ग्रंथियां हैं और कई प्रकार के शक्ति-केंद्र हैं। अथर्वश्रुतिमें आठ चक्र कहे हैं, वे इसीमें हैं। इसका वर्णन किसी अन्य प्रसंगमें किया जायगा। इसी को पर्वत 'हिमवान्' कैलास, गिरि, आदि नाम हैं।

उपनिषद के रहस्य की बात जो इस लेखमें विशेष प्रकार से कहनी

थी, वह उक्त वर्णन से बताई है । अपने अंदर देवताओंके अंशोंका निवास है और मैं उनका अधिष्ठाता हूं, यह मुख्य बात इसमें है । इसका विस्तार बहुत ही होना संभव है, उसका विचार किसी अन्य प्रसंगमें होगा । यहां इतनाही पर्याप्त है ॥

इन्द्रशक्तिवर्धनका अनुष्ठान ।

इसके पूर्व जो वर्णन किया है उसका मननपूर्वक उत्तम अभ्यास करके अपने मनके अंदर संपूर्ण बातों का ठीक ठीक ज्ञान स्थिर करना, यह सबसे प्रथम करना चाहिये। अन्यथा अनुष्ठान करना असंभव है ।

खानपानका पथ्य, अन्य रहना सहना इत्यादि सब पूर्व लिखे अनुसार करके मनसे चिन्ता को हटाना, तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, मत्सर, मद आदिके कारण भी मनसे हटानेका यत्न करना चाहिये । तथा मन शांत गंभीर विचारोंसे परिपूर्ण करना चाहिये ।

अपने घरके पारिवारिक जन अपने विचार के साथ सहमत होंगे तो अनुष्ठानमें सुविधा होगी, इसलिये यदि यह अनुकूल परिस्थिति न होगी तो उस विषयमें भी प्रयत्न करना चाहिये । इस सबका तात्पर्य यह है कि विरोध का वायु मंडल जहांतक हो सके वहांतक दूर रखना चाहिये और अपने चारों ओर शुभ विचारोंका पवित्र वायुमंडल बनाना चाहिये ।

यदि ऐसा न हुआ और यदि विरोधी वायु मंडलमें ही रहना पडा, तो अन्योंके द्वारा होनेवाले विरोधका परिणाम अपने मन पर न होनेके लिये अपना मन सावधान रखना उचित है। इसका सबसे उत्तम मार्ग यही है कि जो अपने सन्मार्गका विरोध करते हों, उनका भला करनेके लिये और

उसको सद्‌बुद्धि प्रदान करनेद्वारा सन्मार्ग पर लानेकी प्रार्थना परमेश्वर के पास करना । जितना विरोधी वायुमंडल अधिक हो उतनी अधिक अपने मनकी शांति धारण करके उतनी अधिक ईशप्रार्थना करते जाना चाहिये । यह विरोधी वायुमंडल अपनी परीक्षा के लिये ही निर्माण हुआ है, ऐसा समझकर इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका यत्न करना चाहिये। वास्तवमें देखा जाय, तो अनुकूल वायुमंडल की अपेक्षा विरोधी वायुमंडलसे मनकी शक्ति अधिक बढ सकती है; यदि अपना निश्चय स्थिर रहा तो ही शक्ति बढ जाती है, अन्यथा नहीं । इस प्रकार विरोधी वायुमंडलको अपनी उन्नति के साधनमें लगानेसे लाभ अधिक हो सकता है ।

इस रीतिसे अपनी बाह्य परिस्थितिकी अनुकूलता संपादन करके अपने आंतरिक अनुष्ठानमें दत्तचित्त होना चाहिये । इस लिये यदि अपने अंदर अहिंसावृत्ति उत्तम प्रकार स्थिर हो जाय तो सबसे उत्तम होगा। किसीकी हिंसा न हो किसीको दुःख न पहुंचे, सबका कल्याण हो जाय, मैं अपनी ओरसे सबको अभय देता हू, इत्यादि रीतिसे अपने आचरणसे अहिंसाकी भावना स्थिर करना चाहिये। यह बात प्रारंभमें नहीं बन सकती, परंतु प्रयत्न करनेपर कालान्तरसे बन सकती है। शीघ्र बने या देरसे बने इस दिशासे प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

इसके पश्चात् घरके अंदर एक कमरा स्वच्छ,सुंदर और मनोरम इस कार्य के लिये लेना चाहिये, उसमें धीर वीर तथा साधुसंतों के चित्र लगे हों और अन्य सामान भी ऐसा हो कि जो अपनी उपासना की अनुकूलता बढानेवाला हो । इस स्थानपर एक भी पदार्थ ऐसा न हो कि जो इस अनुष्ठान का विरोधी हो ।

इस कमरेमें स्वच्छ और निर्मल वस्त्र पहिनकर स्नान आदि करके सुगंध पुष्पोंको वहां पास रखकर अपनी उपासना आदि सब दैनिक कार्य करके, चित्तकी समाधानतापूर्वक, मनकी पूर्ण निर्वैर भावनाके साथ अपना अनुष्ठान करना चाहिये ।

इसमें सबसे प्रथम एक साधारण प्राणायाम करना चाहिये। नासिकासे स्वरयुक्त श्वास लेना, जितना लिया जा सकता है उतना लेना, जब फॅफडे भर जांय तब स्वरसे उच्छ्वास करना चाहिये। अर्थात् श्वास और उच्छास करने के समय मंद शब्द होता रहे, बडा शब्द न हो, परंतु मंद शब्द होना चाहिये। इस मंद शब्दपर चित्त को जमाना चाहिये। आप जितना यह प्राणायाम कर सकते हैं, उतना कीजिये। कुंभक थोडा कीजिये। अथवा जितना विना आयास कर सकते हैं, कीजिये। इस प्रकार करनेसे चित्त की प्रसन्नता बढेगी आर मनमें और शरीरमेंभी विलक्षण आरोग्य प्राप्त होनेका अनुभव होगा। इस विषयमें इसके पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है। उसका भी यहां अनुसंधान कीजिये।

इसके पश्चात् अपना सीधा हाथ छातीपर रखिये, यहां ही संपूर्ण दैवी शक्तियोंके साथ इन्द्रशक्ति रहती है, यहांही—ईश—शक्तियोंका केन्द्र है, जो महातत्त्व कहा जाता है वह यहां ही है, इसी की वृद्धि करनी है। इसलिये अपनी छातीपर हाथ रखिये और यहां इन्द्र शक्तिके निवासका स्मरण कीजिये। संपूर्ण दैवी शक्तियोंके साथ परमात्माका मानसिक ध्यान अर्थात् उनके अनंत शक्तिओं में से कुछ शक्तियों का स्मरण कीजिये और अपने अंतरात्मा का परमात्मासे मेल होनेका ध्यान कीजिये। जिस प्रकार तालावमें तैरनेवाला जलमें रहता है उस प्रकार आप उस परमात्मामें है, उसकी अपार सत्ताके आधार से आपकी सत्ता है, वह चारों ओर है और आपका आत्मा उसके बीचमें है, वह जैसा बाहर है वैसा अंदर भी है, इत्यादि ध्यान कीजिये। और दूसरा कोई विचार मनमें न उठे, ऐसा इसी विचार पर चित्त एकाग्र कीजिये।

इस प्रकार एकाग्र चित्त करके जो ध्यान होता है वह शक्तिवर्धक होता है। इसी ढंगसे बाह्य इन्द्रशक्ति के साथ अपनी इन्द्रशक्तिका संबंध कल्पनासे कीजिये। चित्तमें यही विचार स्थिर रहे कि एक आत्मा परमात्माका

परस्पर संबंध जुड गया है। पहिले पहिले यह ध्यान ठीक नहीं होगा परंतु कुछ अभ्यास के पश्चात् शक्ति की वृद्धिपूर्वक बल बढनेका अनुभव होगा।

ये दो ध्यान प्रतिदिन नियमपूर्वक कीजिये और अन्यान्य बातों को पूर्वोक्त विधिपूर्वक कीजिये। इस प्रकार करनेसे आपके अंदर इन्द्रशक्ति बढेगी और आपको इसके बढनेका अनुभव भी होगा।

यह अनुष्ठान ऐसा है कि इसके विषयमें जितना आप प्रयत्न करेंगे उतना लाभ आपको अवश्यही मिल सकता है। जो संपूर्ण बातें इसमें लिखीं हैं वे तो बडे सुकृति पुरुष ही कर सकते हैं और उनके करने की अनुकूलता हरएक को होगी यह भी कहा नहीं जा सकता।

परंतु यदि सब प्रयोग विधिपूर्वक करनेकी संभावना न हो तो न सही, जो कुछ किया जाय अथवा जितना हो सकता है उतना ही करना चाहिये। उससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा ही। यह अनुष्ठान वास्तवमें अति सुगम है, परंतु आजकल परिस्थिति ऐसी बिगडी हुई है कि उसमें धनादि होनेपर भी अपनी आत्मिक उन्नति करनेके साधन कम ही मिलते हैं।

इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि दिनमें एक या दोवार घण्टा या आधा घण्टा इस कार्य के लिये ही केवल अलग निकालकर इस समयमें कोई अन्य झंझाट न रखना। अन्य बातों के विषयमें जितना हो सके उतना करना और प्रतिकूल परिस्थितिमें परमेश्वर प्रार्थना का ही अवलंबन करना चाहिये, जिससे सब विघ्न क्रमपूर्वक दूर हो जायगे और अनुकूल परिस्थिति दिन ब दिन मिलती जायगी।

जितना करेंगे उतना लाभ अवश्य होगा।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

संस्कृत-पाठ-माला।

संस्कृत-पाठमालाके अध्ययनसे लाभ—

(१) अपना काम धंदा करते हुए फुरसत के समय आप किसी दूसरेकी सहायताके विना इस पुस्तकोंको पढकर अपना संस्कृत का ज्ञान बढा सकते हैं। (२) प्रतिदिन घंटा अथवा आधा घंटा पढनेसे एक वर्षके अंदर आप रामायण-महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। (३ पाठशालामें जानेवाले विद्यार्थी इन पुस्तकोंसे बडा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यदि आपके मनमें संस्कृत सीखनेकी इच्छा है, तो आप इन पुस्तकोंको मंगवाइये।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है–

(१) प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग। इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है। (२) चतुर्थ भाग। इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है। (३) पंचम और षष्ठ भाग। इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है। (४) सप्तमसे दशम भाग। इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनाने की विधि बताई है। (५) एकादश भाग। इस भागमें सर्वनाम के रूप बताये हैं। (६) द्वादश भाग। इस भागमें समासोंका विचार किया है। (७) तेरहसे अठारहवें भागतकके छः भाग। इन छः भागोंमें क्रियापदविचारकी पाठविधि बताई है। (८) उन्नीससे चौवीसवें भागतकके छः भाग। इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है। अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे, उनको अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

बारह पुस्तकोंका मूल्य ४) और डा. व्य. ॥)

चौवीस पुस्तकोंका मूल्य ६॥) रु. और डा. व्य. ।॥=)

प्रति भाग का मू० ।=)छः आने और डा० व्य.–)एक आना।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

१ प्रथम काण्ड	(सजिल्द)	मू० २)	डा. व्य. ॥)
२ द्वितीय काण्ड	,,	२)	॥)
३ तृतीय काण्ड	,,	२)	॥)
४ चतुर्थ काण्ड	,,	२)	॥)
५ पंचम काण्ड	,,	२)	॥)
६ षष्ठ काण्ड	,,	२)	॥)
७ सप्तम काण्ड	,,	२)	॥)
८ अष्टम काण्ड	,,	२)	॥)
९ नवम काण्ड	,,	२)	॥)
१० द्वादश काण्ड	,,	१)	।=)
११ त्रयोदश काण्ड	,,	१)	।=)
१२ चतुर्दश काण्ड	,,	१)	।=)
१३ १५से१८ तक ४काण्ड	,,	२॥)	॥।)

सूचना- येही काण्ड विनाजिल्द लेनेपर प्रत्येक का ॥) आठ आने मूल्य कम होगा।

अन्य ग्रंथ।

१ गीता-समीक्षा मू. =) डा. व्य. -)

२ श्रीमद्भगवद्गीता-लेखमाला

भाग १- २ प्रत्येकका मू० ॥) =)

,, ,, ३ ,, ,, ॥।) ≡)

3 SUN ADORATION by the Ruler of Aundh

मू० १) डा. व्य० ।=)

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

योगसाधनमाला !

संध्योपासना ।

योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इसमें लिखी है । मूल्य १॥) डा. व्य. ।=)

वैदिक प्राणविद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये उसका वर्णन इसमें है । मूल्य ॥) डा. व्य. =)

ब्रह्मचर्य ।

इस सचित्र पुस्तकमें अथर्ववेदीय 'ब्रह्मचर्य-सूक्त' का विवरण है । और ब्रह्मचर्य-साधनके और वीर्यरक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय बताये हैं । मू० १) डा. व्य. ।-)

योगसाधनकी तैयारी ।

योगविषयक अत्यंत आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इसमें संग्रह है । मूल्य ॥|) डा. व्य. ।-)

योगके आसन ।

योगकी आरोग्यवर्धक व्यायामपद्धति । मू० २) डा. व्य. ।=)
आसनचित्रपट मूल्य ≡) डा. व्य. -)

सूर्यभेदन-व्यायाम ।

सचित्र बलवर्धक योगके व्यायाम । मू० ॥) डा. व्य. =)

मुद्रक और प्रकाशक-श्री० दा० सातवळेकर
भारत-मुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)